पुस्तक मिलने का पता—
असितकुमार हालदार
हाथीभाटा, अजमेर ।

Rathor Durgadas

BY

Ram Ratan Haldar,

Assistant Curator, Rajputana Museum,

AJMER.

With a foreword by

M. M. RAI BAHADUR.

DR. **Gaurishankar H. Ojha,** D. LITT, HONORARY.)

Printed at the Vedic Yantralaya, Ajmer,
and published by the author.

1938 A. D. **Price Re. 1.**

वीरशिरोमणि राठोड़ दुर्गादास—

राठोड़ दुर्गादास

प्राक्कथन

इतिहास महान् पुरुषों का अमर स्मारक है। प्रत्येक देश में समय-समय पर कुछ ऐसे वीर हो गये हैं, जिनका वहां के देशवासियों के मन में बड़ा सम्मान है। राठोड़ दुर्गादास भारत के ऐसे ही पुरुष-रत्नों में था। इतिहास से थोड़ा भी अनुराग रखनेवाला व्यक्ति उसके नाम से भली-भांति परिचित है। उसके जैसे अपूर्व आत्मत्याग का दूसरा उदाहरण भारतीय इतिहास के पृष्ठों में कठिनता से मिलेगा। वीरता का तो दुर्गादास मूर्तिमान स्वरूप ही था।

इस वीर व्यक्ति के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले नाटक और उपन्यास तो अबतक कई प्रकाशित हो चुके हैं, पर जैसा स्वाभाविक ही है, उनमें ऐतिहासिक सत्य का स्थान बहुधा कल्पना ने ले लिया है। फलस्वरूप इतिहास-प्रेमियों के लिए उनकी उपयोगिता नहीं के बराबर ही है। वे कुछ समय के लिए हमारा मनोरंजन भले ही कर दें, पर उनसे हमारी साहित्यिक भूख को भोजन नहीं मिलता।

दुर्गादास के सुसम्बद्ध एवं प्रामाणिक इतिहास का अभाव हिन्दी में एक खटकनेवाली बात थी। मुझे यह देख कर हार्दिक प्रसन्नता हुई है कि मेरे सहकारी श्रीरामरतन हालदार ने दुर्गादास के सम्बन्ध में प्रस्तुत ग्रन्थ लिखकर इस अभाव की पूर्ति

का सफल प्रयत्न किया है। दुर्गादास की एकमात्र ऐतिहासिक दृष्टिकोण से लिखी गई प्रामाणिक जीवनी की बड़ी आवश्यकता थी। वस्तुतः ऐसे महान् पुरुषों की जीवन-गाथाएं साहित्य की अमर निधि होती हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ बृहदाकार न होते हुए भी इतिहास की दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण और उपयोगी है। लेखक ने दुर्गादास के जीवन से संबंध रखनेवाले प्रत्येक पहलू का गंभीर अध्ययन किया है, ऐसा प्रतीत होता है। दुर्गादास से संबंध रखनेवाली सभी महत्वपूर्ण बातों पर उन्होंने अच्छा प्रकाश डाला है और जगह-जगह विवादग्रस्त गुत्थियों को सुलझाने का भी सराहनीय प्रयत्न किया है।

श्रीयुक्त हालदार एक बंगाली सज्जन हैं। वे चाहते तो अपनी मातृभाषा में ही इस ग्रन्थ का निर्माण कर सकते थे, पर ऐसा न करके उन्होंने अपने आन्तरिक हिंदी-प्रेम का ही परिचय दिया है।

ऐसा सरल, सुबोध एवं उपयोगी ग्रन्थ हिन्दी-साहित्य को भेंट करने के लिए लेखक बधाई का पात्र है। मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि इसका हिन्दी-संसार में समुचित आदर हो।

गौरीशंकर हीराचंद ओझा

दो शब्द

राठोड़ दुर्गादास राजस्थान के उज्ज्वल रत्नों में से हैं। उनके विषय में प्रामाणिक पुस्तक का अभाव देखकर प्राय: दस वर्ष पहले मैंने माननीय पं० गौरीशंकर हीराचन्दजी ओझा से वीर-विनोद, जोधपुर राज्य की ख्यात आदि हस्तलिखित पुस्तकें लेकर प्रस्तुत पुस्तक को पूर्ण किया था, परंतु इसके बाद दूसरे कार्यों में व्यस्त रहने के कारण इसे छपा नहीं सका।

इस पुस्तक को लिखते समय प्राप्त विवरणों तथा संवतों की बड़ी भिन्नता पाई गई, इसलिए मैंने केवल प्रामाणिक बातों को ही संक्षेप एवं सावधानी से लिखा है। फिर भी संभव है कहीं-कहीं भूलें रह गई हों। पाठकगण कृपाकर उन्हें सूचित करें, ताकि द्वितीय संस्करण में उनका सुधार किया जा सके।

माननीय ओझाजी के उक्त पुस्तकें देने तथा समय-समय पर अपनी सम्मति से बाधित करने के कारण मैं उनका हृदय से कृतज्ञ हूं। मेरे मित्र पं० कृष्णचन्द्र विद्यालंकार भाषासंबंधी बातों में सहायता देने के लिए धन्यवाद के पात्र हैं। पं० चिरंजीलाल व्यास ने भी समय-समय पर मदद देकर बाधित किया है।

दुर्गाष्टमी
वि० सं० १९९४

रामरतन हालदार

विषय-सूची

ग्रन्थकर्त्ता-द्वारा रचित प्रबन्ध (अंग्रेजी में)।

1. An unknown battle between a ruler of Gujarāt and a king of Mewār.
2. Idar and Mahārāṇā Hammīra of Mewār.
3. Yaśodhavala Paramāra of Ābū and his inscriptions.
4. Dhārāvarsha Paramāra of Ābū and his inscriptions.
5. The Guhila Kings of Mewār.
6. Rāvala Jaitrasimha of Mewār.
7. Who were the Imperial Pratihāras of Kanauj.
8. Chitor and its sieges.
9. The Chauhānas of Ajmer, Sāmbhar and Ranthambhor.
10. The Chauhānas of Nāḍol and Jālor.
11. Some reflections on Pṛithvīrājarāsā.
12. Inscription of the time of Mahārāja Sūrapāladeva; Vikrama-Samvat 1212.
13. A note on two inscriptions of the 3rd century A. D.
14. An inscription of the time of Allaṭa of Mewār; V. S. 1010.

15. A note on an inscription of the 4th or 5th century B. C.

16. Nāsun inscription of Īśānabhaṭa; V. S. 887.

17. The Ghosuṇḍi inscription of the 2nd century B. C.

18. Inscription of the time of Hammīra of Ranthambhor; V. S. 1345.

19. The Sohāwal copper-plate inscription of Mahārāja Śarvanātha; Gupta-Samvat 191.

20. The Barwāni copper-plate inscription of Mahārāja Subandhu ; Gupta-Samvat 167.

21. Sāmoli inscription of the time of Śīlāditya of Mewār ; V. S. 703.

22. Ḍabok inscription of the time of Dhavalappadeva; Harsha-Samvat 207.

23. Two Paramāra inscriptions dated V. S. 1116 and V. S. 1166.

24. Māla plates of Vīrasimhadeva of Dungarpur; V. S. 1343.

25. The fourth slab of the Kumbhalgarh inscription of the time of Mahārāṇā Kumbhakarṇa of Mewār ; V. S. 1517.

26. Chirvā inscription of the time of Samarasimha of Mewār; V. S. 1330.

27. चित्तौड़ का क़िला और उस पर चढ़ाई (हिन्दी में)।

वीरशिरोमणि राठोड़ दुर्गादास

वंश-परिचय तथा उसकी बाल्यावस्था—

मंडोवर (मारवाड़) के राव रणमल के पुत्रों में करणजी हुआ, जिससे करणोत वंश चला। इस वंश का मुख्य ठिकाना कानाणा था। वहां के ठाकुर आसकरण का पुत्र दुर्गादास हुआ। यह ठिकाना आरंभ से ही बड़े उमरावों के अधिकार में है। दुर्गादास के पीछे कानाणा[1] का ठिकाना उसके पुत्र अभयकरण के आधीन रहा। इसके अतिरिक्त और भी ठिकाने दुर्गादास के वंशजों के आधीन रहे, यथा भंवर का ठिकाना तेजकरण के वंशजों के आधीन, बाघावास महेकरण के आधीन और समदड़ी चैनकरण के आधीन। नीचे दी हुई वंशावली[2] से इसका स्पष्टीकरण हो जायगा—

---

१. दुर्गादास की जागीर में प्रथम सालवा गांव था, जो जोधपुर से नौ कोस पूर्व में है।

२. महामहोपाध्याय रायबहादुर पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझाजी की नोट-बुक से।
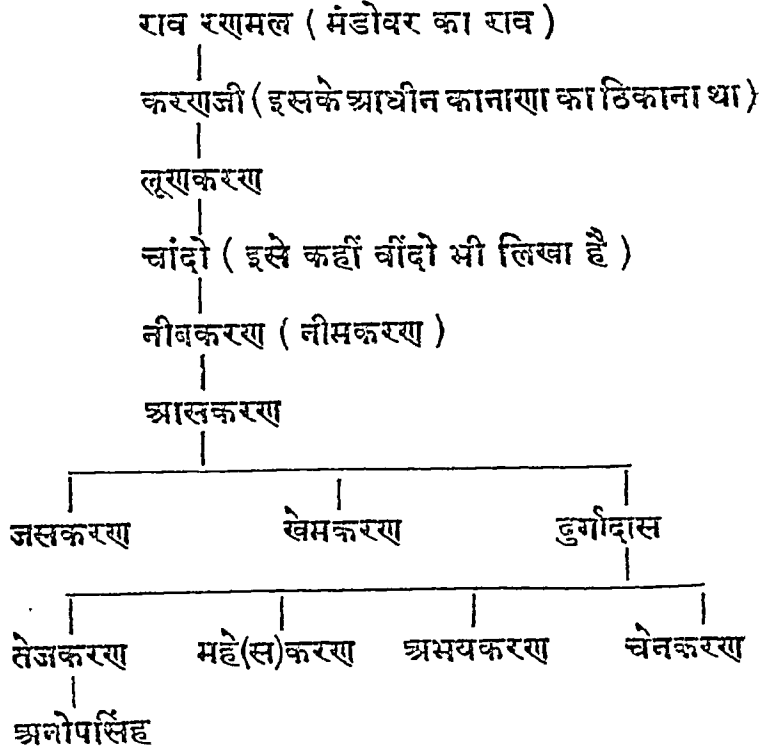
राठोड़ दुर्गादास बड़ा ही शूरवीर, देशभक्त और स्वामी-भक्त सरदार हुआ। मारवाड़ में आज तक उसके बराबर श्रेष्ठ वीर कोई नहीं हुआ। उसका जन्म विक्रम संवत् १६९५ द्वितीय श्रावण सुदि १४ (ई० स० १६३८ ता० १३ अगस्त) सोमवार को जोधपुर से कुछ अन्तर पर बड़ा सालवा नामक ग्राम में हुआ था। वह जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह के मन्त्री आसकरण का तीसरा बेटा था। उसकी माता मांगलिया वंश

की थी, जिसकी वीरता की प्रशंसा सुनकर आसकरण ने उससे विवाह कर लिया था, परन्तु उसकी माता की प्रकृति कुछ उग्र होने से उसके पिता और माता के वीच में प्रेम कम रहता था। आसकरण ने सालवा ग्राम से कुछ दूरी पर पुत्र सहित अपनी इस स्त्री के रहने का अलग प्रवन्ध कर दिया था। दोनों का निर्वाह कठिनता से होता था। इसलिए दुर्गादास वचपन से ही खेती करके गांव लूणावे में दिन विताता था।

दुर्गादास के वचपन की एक कथा प्रसिद्ध है। एक वार सांड़नियों का एक दल उसके खेत में घुस आया। उसने क्रोधित होकर दल के रायका (संभालनेवाला) से कहा कि यह किसकी सांड़नियां हैं? मेरे खेत में क्यों लाया? जल्दी से निकाल लेजा, नहीं तो मारूंगा। हांकनेवाले ने, जो राज का नौकर था और कुछ टर्रा भी था, उत्तर दिया कि तू नहीं जानता, ये सांड़नियां उसकी हैं, जिसके धोले (सफ़ेद) ढूंढ़े[1] पर छज्जा (छप्पर) नहीं है। दुर्गादास को क्रोध तो पहिले ही से चढ़ रहा था, यह वात सुनकर उसके वदन में आग लग गई। उसी समय उसने तलवार खींचकर राज के रायके पर एक ऐसा हाथ मारा कि उसके दो टुकड़े हो गये। यह समाचार दरवार में पहुंचा और महाराजा जसवंतसिंह के पास शिकायत हुई कि उसके मन्त्री आसकरण के पुत्र ने राज के रायके

१. मारवाड़ में ढूंढ़ा एक टूटे-फूटे मकान को कहते हैं।

को मार डाला है। महाराजा ने उसी समय आसकरण को बुलाकर उससे पूछा तो उसने कहा कि मेरे बेटे तो सब हुज़ूर के क़दमों में हाज़िर हैं, गांव में मेरा कोई बेटा नहीं है। इसपर महाराजा ने दुर्गादास को बुलाकर पूछा कि क्या तू ने रायके को मारा है?

दुर्गादास—"हां अन्नदाताजी मारा है।"

महाराजा—"क्यों मारा?"

दुर्गादास—"उसने बात ही ऐसी कही थी।"

महाराजा—"क्या बात कही थी?"

दुर्गादास—"उस गंवार ने खाविंदों (मालिकों) के क़िले को धोला ढूंढ़ा बताया, जो राठोड़मात्र का जीवनाधार है। उसके छोटे मुंह से यह बड़ी बात मुझ से सही नहीं गई। मुझे क्रोध आ गया और मैंने उसके तलवार मार दी।"

इस बात को सुनकर महाराजा ने दुर्गादास से पूछा कि तू कौन है, किसका बेटा है? दुर्गादास ने उत्तर दिया कि मैं करणोत राठोड़ हूं और आसकरणजी का पुत्र हूं। तब महाराजा ने आसकरण से कहा कि तुम तो कहते थे कि गांव में मेरा कोई बेटा नहीं है, अब सुनो यह क्या कहता है। आसकरण ने उत्तर दिया कि महाराज! कपूत बेटा बेटों में नहीं गिना जाता। तब महाराजा ने कहा कि इसको कपूत मत कहो, यह बड़ा सपूत है, कभी काम पड़ा तो डगमगाते हुए मारवाड़ को यही

कन्या देगा। यह कहकर महाराजा जसवंतसिंह ने दुर्गादास को अपने पास ही रख लिया[1]।

कालचक्र में महाराजा ने जैसा कहा था, वैसा ही हुआ। महाराजा का देहान्त हो जाने पर बादशाह औरंगज़ेब ने मारवाड़ को खालसे कर लिया और महाराजा की राणियों तथा कुंवरों को पकड़ना चाहा। उसने सारे मारवाड़ से हिन्दुओं का आधिपत्य उठाकर मुसलमानों का अधिकार जमाना चाहा। उस विकट समय में दुर्गादास ने ही बादशाह की सेना से लड़कर राठोड़ों की लाज रक्खी और फिर ऐसी चाल चली कि औरंगज़ेब को दक्षिण में जाकर कई वर्षों तक मरहटों से लड़ाइयां लड़नी पड़ीं, जिससे मुग़लों का राज्य हिल गया, और अन्त में उसके मरने के बाद मारवाड़ फिर राठोड़ों के हाथ में चला गया, जैसा कि आगे मालूम होगा।

महाराजा जसवंतसिंह और औरंगज़ेब—

महाराजा जसवंतसिंह के पिता का नाम गजसिंह था। गजसिंह के तीन पुत्र अमरसिंह, अचलसिंह और जसवंतसिंह हुए, जिनमें से अचलसिंह बाल्यावस्था में ही मर गया। शेष दो में से अमरसिंह बड़ा था।

जिस समय दिल्ली के तख़्त पर बादशाह शाहजहां राज्य

१. मुन्शी देवीप्रसाद; होनहार बालक; भाग १, पृ० २७–३०।

कर रहा था, उस समय जोधपुर की गद्दी पर महाराज गजसिंह था। गजसिंह ने मरते समय बादशाह शाहजहां से प्रार्थना की थी कि मेरे मरने के बाद मेरा छोटा कुंवर जसवंतसिंह जोधपुर का राजा हो। बादशाह ने वैसा ही किया और जसवंतसिंह को खिलअत आदि देकर जोधपुर का राजा बनाया। वि० सं० १६९५ आषाढ़ वदि ७ (ई० स० १६३८ ता० २५ मई) को उसका राजतिलक हुआ। उसी साल शाहजहां ने जसवंतसिंह का मनसब एक हज़ारी ज़ात व हज़ार सवार से बढ़ाकर पांच हज़ारी ज़ात व पांच हज़ार सवार का कर दिया। इसके बाद वह बादशाह के साथ काबुल की मुहिम पर गया। वि० सं० १६९९ (ई० स० १६४२) में शाहज़ादा दाराशिकोह के साथ वह भी कन्धार भेजा गया। उसकी सेवा से खुश होकर बादशाह शाहजहां ने वि० सं० १७०२ (ई० स० १६४५) में उसका मनसब और भी बढ़ा दिया[1]। इसके उपरान्त 'महाराजा' की उपाधि उसको दी गई, जो उस समय तक और किसी को भी नहीं मिली थी।

जब बादशाह शाहजहां की बीमारी के कारण उसके शाहज़ादों में दिल्ली के तख़्त के लिए परस्पर लड़ाइयां हुईं, तब महाराजा जसवंतसिंह को सात हज़ारी ज़ात व सात हज़ार सवार का मनसब देकर शाहज़ादा दाराशिकोह की सलाह से

---

१. वीरविनोद; भाग २, प्रकरण दसवां, पृ० ८२३। इसमें उसका मनसब छः हज़ार ज़ात और छः हज़ार सवार लिखा है।

बादशाह ने बीस हज़ार फ़ौज के साथ औरंगज़ेब और मुराद को रोकने के लिए मालवे की तरफ़ भेजा। उज्जैन के पास धर्मातपुर[1] में वि० सं० १७१५ वैशाख वदि ८ (ई० स० १६५८ ता० १५ अप्रेल) को भारी लड़ाई हुई, जिसमें महाराजा जसवंतसिंह के साथी क़ासिमख़ां आदि के आलमगीर (औरंगज़ेब) से मिल जाने के कारण आलमगीर और मुराद की जीत हुई। महाराजा जसवंतसिंह अपने आठ हज़ार राजपूतों में से बचे हुए छः सौ राजपूतों को लेकर जोधपुर पहुंचा। जब उसकी राणी (बूंदी के राव शत्रुशाल की बेटी और उदयपुर के महाराणा राजसिंह की साली) ने उसके हारकर वापस आने का समाचार सुना, तब उसने क़िले के किवाड़ बन्द करवाकर महाराजा को भीतर न आने दिया और खबर देनेवालों से कहा–"मेरा पति लड़ाई से भागकर नहीं आवेगा। वह वहां ज़रूर मारा गया है और यह जो आया है बनावटी होगा, मेरे लिए चिता तैयार करो।" इन बातों से महाराजा ने लज्जित होकर महाराणी से कहलाया कि मैं बहुत बड़ी लड़ाई लड़कर आया हूं, मेरा जिरहबख़्तर और घोड़ा देखना चाहिये। वे कैसे छिन्न-भिन्न हो रहे हैं, और मैं इसलिए आया हूं कि यहां से जमइयत (सेना) बना(तैयार)कर आलमगीर से फिर

१. फतेहाबाद से पश्चिम में और उज्जैन से १४ मील दक्षिण-पश्चिम में (टॉड राजस्थान; जिल्द २, पृ० ६८०, टिप्पण सं० २)।

लड़ूं। अन्त में इन बातों को सुनकर महाराणी ने उसे भीतर तो आने दिया, परन्तु भोजन के समय महाराजा के सामने सोने-चांदी के बरतन न रखकर लकड़ी, मिट्टी और पत्थरों के बरतनों में भोजन परोसा। महाराजा ने पूछा कि भोजन के लिए ऐसे बरतन क्यों लाये गये? महाराणी ने उत्तर दिया कि धातु के शस्त्रों की आवाज़ से डरकर आप यहां चले आये हैं, यदि यहां भी धातु के बरतनों का खड़का आपके कान में पड़े तो न जाने क्या हालत हो। इसपर महाराजा ने अत्यन्त लज्जित होकर महाराणी से कहा कि मैं अब जो लड़ाइयां करूं उनका हाल सुन लेना[1]। इस विषय में बर्नियर ने भी अपनी पुस्तक में लिखा है कि जब जसवंतसिंह की राणी ने, जो राणा की बेटी थी, यह खबर सुनी कि वह (जसवंतसिंह) प्रायः पांच सौ दिलेर राजपूतों के साथ आवश्यकता के कारण, अपमान के साथ नहीं, लड़ाई का खेत छोड़कर आ रहा है, तब उस वीर सिपाही को बचकर आने का धन्यवाद और उसको विपत्ति में संतोष देने के बदले उसने यह सख़्त हुक्म दिया कि क़िले के किवाड़ बन्द कर दिये जावें।। उस(स्त्री)ने कहा कि यह व्यक्ति अपमानित है, अतएव इन दीवारों के भीतर नहीं आ सकता। मैं इसे अपना पति स्वीकार नहीं करती। मेरी आंखें

१. वीरविनोद; भाग २; प्रकरण दसवां, पृ० ८२५। टॉड; राजस्थान, भाग २, पृ० ७२४।

जसवंतसिंह को फिर नहीं देख सकतीं। राणा का दामाद उसी के अनुरूप होगा, वह कापुरुष नहीं हो सकता। जो राणा के वड़े नामी वंश से सम्बन्ध रखता है, उसके गुण उस वड़े वंश के अनुसार ही होने चाहियें। यदि वह विजय प्राप्त न कर सके तो उसे मर जाना चाहिये। थोड़ी देर के बाद वह चिल्लाई कि चिता तैयार करो, मैं अग्नि में अपना शरीर जला दूंगी, मुझे धोखा हुआ है, मेरा पति वास्तव में मर गया है, उसका जीवित रहना संभव नहीं। फिर क्रोध में आकर वह बकने लगी। आठ या नौ दिन तक उसकी यही हालत रही। उसने अपने पति को देखने से बराबर इनकार किया, परन्तु राणी की माता के आजाने से उसका मन कुछ शान्त हुआ। उसने अपनी बेटी को राजा के नाम पर वायदा करके तसल्ली दी कि थकावट दूर होने पर वह दूसरी फ़ौज इकट्ठी करके औरंगज़ेब पर हमला करेगा और अपना अपमान मिटावेगा[1]।

औरंगज़ेब आगरे के पास दाराशिकोह को जीतने के बाद[2] अपने पिता शाहजहां और छोटे भाई मुराद को क़ैद करके दाराशिकोह के पीछे लाहौर की तरफ़ रवाना हुआ। जयपुर

१. कनस्टेवल एन्ड स्मिथ; वर्नियर्स ट्रैवेल्स; पृ० ४०-४१। देखो टैवर्नियर्स ट्रैवेल्स; जिल्द २, पृ० १४४।

२. आगरे से आठ मील पूर्व में समूगढ़ या संभुगढ़ की लड़ाई में ई० सं० १६५८, ता० २६ मई को।

के राजा जयसिंह के समझाने से जसवंतसिंह भी औरंगज़ेब के पास आ गया, यद्यपि उसकी आन्तरिक इच्छा दाराशिकोह को सहायता देने की थी। औरंगज़ेब पंजाब से दारा को निकालकर पीछा आया और शाहज़ादा शुजा से युद्ध करने को बंगाल की तरफ़ चला। इलाहाबाद के पास खजवा[1] गांव से आगे बढ़कर उसने वि० सं० १७१५ माघ वदि ६ (ई० स० १६५६ ता० ४ जनवरी) को अपने भाई शुजा से लड़ने के लिए सेना तैयार की और दाहिनी फ़ौज का अफ़सर अपनी राजपूत सेना सहित जसवंतसिंह को बनाया। शुजा की सेना से मुक़ाबला शुरू हुआ, परन्तु रात हो जाने के कारण दोनों तरफ़ से लड़ाई बन्द हो गई। एक को दूसरे का डर होने से घोड़ों से ज़ीन और आदमियों से हथियार अलग नहीं किये गये। उसी रात को औरंगज़ेब की फ़ौज में से महाराजा जसवंतसिंह ने शाहज़ादा शुजा को छिपे तौर पर कहला भेजा कि हम आज पिछली रात को औरंगज़ेब के लश्कर में छापा मारकर लूट-खसोट करते हुए निकलेंगे, उस समय औरंगज़ेब अपनी सेना सहित हमारा पीछा करेगा, आपको चाहिये कि औरंगज़ेब की फ़ौज पर पीछे से टूट पड़ें।

इस शर्त के अनुसार महाराजा जसवंतसिंह ने, जो मन से

---

१. इलाहाबाद से ३० मील पश्चिम में। जेम्स् बर्जेस्; क्रोनोलोजी ऑव् इंडिया; पृ० १०५।

शाहजहां का शुभचिंतक और दाराशिकोह का मित्र था, चार-पांच घड़ी रात रहते विद्रोह कर दिया और पहले-पहल अपने निकट के सुलतान मुहम्मद के लश्कर को लूटा। उसको लूटने के बाद उसने बादशाही लश्कर पर छापा मारा और जो चीज़ मिली लूट ली और जो सामने पड़ा उसे मार डाला। इससे औरंगज़ेब की सेना में भगदड़ मच गई। जिसे जिधर रास्ता मिला वह उधर ही भागा। बहुतसे लोग घबराकर शुजा से जा मिले और बहुतसे जसवंतसिंह से मिलकर माल-असबाब लूटने लगे, परन्तु साहसी औरंगज़ेब बिलकुल न घबराया। वह अपनी सेना में फिरने लगा। उसने हुक्म दिया कि कोई अपनी जगह से न हिले और जो भागता हुआ नज़र आवे वह गिरफ़्तार करके उसके पास लाया जावे। फिर अपने लोगों से उसने कहा कि हम जसवंतसिंह के विद्रोह को अच्छा समझते हैं, क्योंकि हमारे हिताहित चाहनेवालों की परीक्षा इसी समय हो गई, नहीं तो युद्ध के समय बड़ी मुश्किल होती। बहुतसे लोग जसवंतसिंह के साथ निकल भागे, कितने शुजा से जा मिले और कुछ इधर-उधर भाग गये। उस समय औरंगज़ेब की फ़ौज आधी से भी कम रह गई थी[1]। शुजा के आक्रमण का अवसर खो देने के कारण

१. वीरविनोद; भाग २, प्रकरण दसवां, पृ० ८२६-२७। एलफ़िन्स्टन; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; पृ० ५६१।

महाराजा जसवंतसिंह अपने साथियों समेत जोधपुर पहुंचा।

इन सब कारणों से आलमगीर जसवंतसिंह से मन में जलने लग गया था, परन्तु इस ज़बरदस्त राजा को अपने विरुद्ध करना उचित न समझकर शुजा की लड़ाई से निश्चिन्त हो जाने के बाद आंबेर के महाराजा जयसिंह की मारफ़त उसने उससे मेल कर लिया, किन्तु जसवंतसिंह को औरंगज़ेब का डर था, जिससे उसने दाराशिकोह से सलाह करके आलमगीर से फिर लड़ना चाहा। दाराशिकोह जसवंतसिंह को अपना सहायक जानकर औरंगज़ेब से लड़ने के लिए अहमदाबाद से अजमेर पहुंचा। महाराजा जयसिंह ने जसवंतसिंह को रोक लिया,[1] जिससे वह जोधपुर में ही रहा। फलतः दारा हार गया। उसकी हार होने के बाद औरंगज़ेब ने सुलह का फ़रमान और खिलअत भेज-कर जसवंतसिंह को अहमदाबाद का सूबेदार बनाया। वह दो वर्ष तक वहां रहा। धीरे-धीरे उसका डर हटता गया। अब वह बादशाही दरबार में आने-जाने लगा। फिर दक्षिण की लड़ाइयों में वह शाइस्ताखां के साथ भेजा गया। वहां से शिवाजी मरहटे के साथ मिल जाने के संदेह पर बादशाह ने उसे बुला लिया और वि० सं० १७२८ ज्येष्ठ वदि ८ (ई० स० १६७१ ता० २१ मई) को पेशावर के पास खैबर की घाटी में जमरूद के थाने पर भेज दिया।

१. टैवर्नियर्स ट्रैवेल्स; जि० १, पृ० २७८।

मारवाड़ और औरंगज़ेब—

मुग़लों के समय में अहमदाबाद का शहर और खंभात (कैम्बे) का बंदर व्यवसाइयों के लिए मुख्य स्थान थे। मुग़ल राजधानी (दिल्ली) से उन जगहों पर जाने का सब से सीधा रास्ता मारवाड़ की सीमा से होकर गुज़रता था। यह रास्ता इतने सुभीते का था कि ईसवी सन् की बारहवीं शताब्दी से ही व्यवसायी लोग ऊँटों पर माल लादकर इस रास्ते से आते-जाते थे, जिससे वहां के डाकुओं को पाली शहर के लूटने तथा व्यवसायियों से रुपये लेने से यथेष्ट आमदनी हो जाती थी। पाली शहर (मारवाड़), अजमेर और अहमदाबाद के बीच में होने से, राजपूताने के पश्चिमी हिस्से का एक प्रधान व्यवसाय का केन्द्र बन गया था। इसलिए बादशाह ने सोचा कि यदि यह प्रदेश (मारवाड़) मुग़ल राज्य में मिला लिया जाय अथवा किसी पूर्णतया अधीनता स्वीकार करनेवाले राजा के अधिकार में रक्खा जाय, तो मुसलमान व्यवसायियों तथा मुग़ल सेना के लिए मुग़ल राजधानी से भारत के पश्चिमी प्रान्त तथा अरब समुद्र तक जाने-आने का बड़ा सुभीता हो जावे। इसके अतिरिक्त यह देश हाथ लगने से मेवाड़ के घमंडी राणा को एक तरफ़ डाल दिया जा सकेगा और राजपूताने के मध्य में मुग़ल राज्यरूपी कुदाल

को डालकर उसके ऐसे दो टुकड़े कर दिये जा सकेंगे कि आवश्यकता होने पर वे दोनों टुकड़े (मारवाड़ और मेवाड़) पृथक् रूप से नष्ट किये जा सकें। औरंगज़ेब का एक और भी अभिप्राय था। मारवाड़ उस समय उत्तरी भारतवर्ष में हिन्दुओं के प्रधान राज्यों में से एक था। यद्यपि उदयपुर का महाराणा भी उस समय बड़ा प्रतापशाली हिन्दू राजा था, परन्तु अपने देश के पहाड़ों के बीच में रहने के कारण और बादशाही दरबार में न आने-जाने के कारण वह बादशाह की दृष्टि में अधिक नहीं गिना जाता था। जसवंतसिंह मारवाड़ का स्वामी था और वह अब जयपुर के राजा जयसिंह की मृत्यु[1] के बाद बादशाह के दरबार में एक मुख्य हिन्दू सरदार था। औरंगज़ेब के मन में यह विचार हुआ कि जसवंतसिंह की मृत्यु के बाद यदि मारवाड़ में उसका उत्तराधिकारी कोई प्रभावशाली हिन्दू हुआ तो वह सदा के लिए मुगल साम्राज्य के लिए कंटक और हिन्दूमात्र का परिपोषक बन जावेगा। वह जज़िया लगाने, मंदिर तोड़ने तथा हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बनाने का हमेशा विरोध करता रहेगा। इन बातों के कारण बादशाह औरंगज़ेब यही चाहता था कि वह किसी प्रकार मारवाड़ को अपने अधिकार में कर ले।

१. टॉड ने लिखा है कि बादशाह ने जयसिंह की मृत्यु विष देकर कराई (टॉड राजस्थान; जिल्द १, पृ० ४४१)। यह भूल है। जयसिंह की मृत्यु पक्षाघात की बीमारी से बुरहानपुर में हुई थी।

ऊपर कहा जा चुका है कि आलमगीर जसवंतसिंह से जलता था, जिसका कारण संभवतः या तो यह रहा हो कि अजीतसिंह के जन्म से प्रायः बीस साल पहले अर्थात् ई० स० १६५८ में जसवंतसिंह ने धर्मातपुर में औरंगज़ेब से लड़ाई की जबकि क़ासिमखां आदि लड़ने से किनारा कर गये; अथवा उसने उसे खजवा गांव में धोखा दिया था, अथवा दाराशिकोह से सलाहकर उसने बादशाह से फिर लड़ना चाहा था जैसा कि पहिले लिखा जा चुका है। जो भी हो हिन्दू-विरोधी आचरण जारी रखने के लिए औरंगज़ेब के लिए यह आवश्यक था कि वह जोधपुर का राज्य किसी अधीन राजा को दे दे अथवा उसे मुग़ल साम्राज्य में मिला लेवे। इस अभिप्राय को सिद्ध करने के लिए उसने यही उपाय सोचा कि वह मारवाड़ में जसवंत जैसे प्रतापी और वीर हिन्दू सरदार को न रक्खे।

इसके उपरान्त अपनी जलन का बदला लेने के लिए बादशाह हमेशा मौक़ा ढूंढ़ने लगा। यह मौक़ा उसे तब हाथ लगा जब कि अफ़गानिस्तान में एक विद्रोह आरंभ हुआ और उसने उस विद्रोह को मिटाने के लिए जसवंतसिंह को वि० सं० १७२८ (ई० स० १६७१) में पेशावर के पास खैबर की घाटी में जमरूद के थाने पर भेज दिया, जहां पर वि० सं० १७३५ पौष वदि १० (ई० स० १६७८ ता० २८ नवम्बर) को मुग़ल सेना पर हुकूमत करते हुए उसका देहान्त हुआ[1]।

१. वीरविनोद; भाग २, प्रकरण दसवां, पृ० ८२७।

महाराजा अजीतसिंह का जन्म और दिल्ली की लड़ाई—

महाराजा जसवंतसिंह की मृत्यु के बाद जमरूद में उसकी आठ खवासें[1] (उपपत्नियां) सती हुई। महाराणी नरूकी और महाराणी जादमण दोनों गर्भवती थीं, इसलिए दुर्गादास आदि राठोड़ सरदारों ने उनको सती होने से रोका। राठोड़ सोनिंग, रणछोड़दास, दुर्गादास आदि सरदारों ने एक पत्र जोधपुर लिख भेजा कि बादशाह के आदमी जोधपुर आवें तो फ़साद न करना और जसवंतसिंह के पुत्र होने तक जैसे-तैसे निभाना। यदि बादशाह जोधपुर न देवें तो सोजत और जेतारण देने के लिए प्रार्थना करना।

सब राठोड़ सरदार, जो जसवंतसिंह के साथ जमरूद गये हुए थे, दोनों राणियों को साथ लेकर जमरूद से अटक नदी पर आये। वहां के अधिकारियों ने उनके पास बादशाही परवाने न होने के कारण उनको रोका, परन्तु राठोड़ दुर्गादास अपने सब साथियों सहित बादशाही लोगों को मारकर वहां से निकल गया[2]

१. सर जदुनाथ सरकार-कृत 'औरंगज़ेब' (जि० ३, पृ० ३७३) में पांच राणियों और सात ख़वासों का सती होना लिखा है। वीरविनोद में एक महाराणी और २८ ख़वास (८ जमरूद में और २० जोधपुर में ख़बर आने पर) कुल २६ स्त्रियों के सती होने का उल्लेख है (भाग २, पृ० ८२८)। जोधपुर राज्य की ख्यात; भाग १, पृ० २४६।

२. इलियट; हिस्ट्री ऑव इंडिया; जि० ७, पृ० २६७।

और लाहौर पहुंचा, जहां वि० सं० १७३५ चैत्र वदि ४ (ई० स० १६७६ ता० १६ फ़रवरी) बुधवार को महाराणी जादमण के गर्भ से कुंवर अजीतसिंह का जन्म हुआ। कुछ ही देर वाद महाराणी नरूकी से भी कुंवर दलथंभन का जन्म हुआ। वहां से वादशाह की आज्ञानुसार सब लोग राणियों और राजकुंवरों सहित दिल्ली गये और वहां किशनगढ़ के राजा रूपसिंह की हवेली में ठहरे। वहां से वहुतसे राजपूत पहिले ही मारवाड़ को चल दिये। औरंगज़ेब ने भी इस विचार से कि उसके विरोधी राठोड़ों की संख्या कम हो जाना ही अच्छा है उनको रोकना ठीक न समझा।

दिल्ली पहुंचने के वाद वि० सं० १७३६ श्रावण वदि २ (ई० स० १६७६ ता० १५ जुलाई) को वादशाह ने फ़ौलादखां कोतवाल को आज्ञा दी कि वह ख़ास चौकी के आदमियों तथा शाहज़ादे सुलतान मुहम्मद के रिसाले के सवारों सहित जाकर राणियों और जसवंतसिंह के पुत्रों को नूरगढ़ (शाही क़िला) में ले आवे। यदि राठोड़ उसका सामना करें तो वह उन्हें सज़ा देवे। वादशाह की आज्ञा पाकर फ़ौलादखां ने वहुत-से सवारों और तोपख़ाने आदि के साथ राठोड़ों के डेरे पर जाकर उनसे कहा कि वादशाह का हुक्म है कि राणियों सहित जसवंतसिंह के कुंवरों को हमें सौंप दो। इस वात को सुनकर दुर्गादास तथा अन्य राठोड़ अत्यन्त क्रुद्ध होकर युद्ध में मरने-

मारने के लिए तैयार हो गये। राणियों के सिर काटकर राठोड़ रणछोड़दास, रघुनाथ, चन्द्रभान आदि राजपूत लड़ाई में शामिल हुए और बड़ी बहादुरी के साथ शाही सेना का तलवारों से जवाब देते हुए लड़ाई में मारे गये[1]। दुर्गादास और कुछ दूसरे राजपूत घायल होकर मारवाड़ को लौटे। इस लड़ाई का वर्णन भिन्न-भिन्न पुस्तकों में भिन्न रूप से लिखा मिलता है, जो नीचे उद्धृत किया जाता है—

जोधपुर राज्य की ख्यात[2] में लिखा है:—

"दिल्ली में राठोड़ों के किशनगढ़ के राजा रूपसिंह की हवेली में पहुंचने के बाद दुर्गादास आदि राठोड़ों ने सलाह की कि यहां मरने से कुछ फ़ायदा नहीं। पहरा बैठ गया तो निकलना मुश्किल होगा। तब कुछ बड़े-बड़े उमराव मारवाड़ चले गये। (उस समय) राठोड़ मोहकमसिंह का परिवार (वहां) आया। खीची मुकुन्ददास कलावत के साथ महाराजा के कुंवरों को गुप्त रूप से भेज दिया गया। दलथंभन रास्ते में ही मर गया। बादशाह ने राठोड़ों को कहलाया कि वे उन्हें राजा के बेटों को सौंप देवें और सालमगढ़ में जाकर डेरा करें। इस काम को करने के लिए फ़ौलादखां को आज्ञा दी गई। वि०

---

१. इस लड़ाई में ६२ राजपूत तथा कुछ और आदमी मारे गये (वीर-विनोद; भाग २, पृ० ८२९-३०)।

२. जोधपुर राज्य की ख्यात; भाग २, पृ० ३२-३६।

सं० १७३६ श्रावण सुदि २ (ई० स० १६७६ ता० ३० जुलाई) को सीदी फ़ौलादख़ां ने २०००० सवारों और तोपख़ाने के साथ राठोड़ों की हवेली पर जाकर कहा कि बादशाह का हुक्म है कि राजा के बेटों को राणियों समेत हमें सौंप दो। तब राठोड़ दुर्गादास, रणछोड़दास, भाटी रघुनाथ आदि २५०-३०० सवारों ने स्नान कर तुलसी के मंजर माथे पर चढ़ाये और दोनों राणियों को घोड़े पर चढ़ा और उन्हें पंचोली पंचायणदास तिलकचंद और जोधा चन्द्रभाण द्वारकादासोत के पास रखकर कहा कि लड़ाई आरंभ होने पर जादमजी और नरूकीजी के सिर चन्द्रभाण के हाथ से उड़वा देना। राठोड़ दुर्गादास और रूपसिंह एक साथ सलाह कर (शाही सेना की तरफ़) चले और अपने साथियों से कहा कि हम जाकर शत्रु को वश में करते हैं, तुम लोग पीछे से आ जाना। उनके रुमाल से शाही सेना के अफ़सरों को इशारा करने पर कोतवाल ने तोपख़ाने के दारोग़ा को मना किया कि तोपें मत चलाओ। दोनों ने तोपों के पास जाकर कहा कि महाराजा जसवंतसिंह के बच्चे तो हमारे सिर कटने के बाद ही मिल सकेंगे, जो उनको लेना हो तो हम से लड़कर लो। इतना कहकर उन्होंने तोपों के मुंह फेर दिये, जिससे गोले दूसरी तरफ़ से निकल जावें। राठोड़ों ने तलवार चलाना आरंभ किया। राणियां पुरुषों के कपड़े पहनकर घोड़ों पर सवार हुईं। चन्द्रभाण उनके सिर काटकर लड़ाई में शामिल

हुआ। भारी लड़ाई हुई। बादशाही फ़ौज के ५०० आदमी मारे गये और ७००/८०० घायल हुए।"

प्रोफ़ेसर जदुनाथ सरकार[1] लिखते हैं:—

"जब बादशाह ने राठोड़ों से अजीत को सौंपने के लिए कहा और उसके मकान के चारों तरफ़ घेरा (पहरा) डाल दिया ताकि वह निकलकर न जा सके, तब दुर्गादास आदि राठोड़ों ने युद्ध करके अजीत को बचाने का उपाय सोच लिया। ता० १५ जुलाई (ई० स० १६७६) को बादशाह ने अजीत और राणियों को पकड़ने और उन्हें नूरगढ़ में लाकर रखने के लिए फ़ौज भेजी। राठोड़ों ने अपने प्राणों को निछावर कर अजीतसिंह की रक्षा करने की प्रतिज्ञा की। जब दोनों तरफ़ से गोलियां चलने लगीं तो रघुनाथ भाटी ने केवल एक सौ राजपूतों के साथ महल के एक तरफ़ से धावा किया। हाथ में भाला लेकर यमराज के समान भयंकर मूर्ति बनाये हुए राठोड़ों ने शत्रु पर आक्रमण किया। इस भयानक आक्रमण को देखकर शाही फ़ौज का साहस टूट गया और उस में घबराहट फैल गई। इस गड़बड़ी के कारण सुयोग पाकर दुर्गादास कुंवर अजीत और राणियों को, जो पुरुषों के कपड़े पहने हुए थीं, साथ लेकर वहां से निकला और मारवाड़ की तरफ़ रवाना हो गया[2]। डेढ़ घन्टे तक

१. सरकार; औरंगज़ेब; जि० ३, पृ० ३७६-७८।

२. डडवेल तथा स्मिथ भी ऐसा ही लिखते हैं (देखो एच्० एच्० डडवेल;

रघुनाथ भाटी ने दिल्ली की गलियों को खून से रंग दिया और अन्त में वह अपने ७० आदमियों के साथ मारा गया। इसके बाद मुग़लों ने दुर्गादास का पीछा किया, परन्तु उनके आ पहुंचने तक दुर्गादास नौ मील आगे निकल चुका था। तब जोधा रणछोड़दास ने अपनी थोड़ीसी सेना से शाही फ़ौज का रास्ता रोका, परन्तु जब उसके साथ लड़ाई खतम हो गई और मुसलमानों ने भागनेवालों का पीछा किया, तब दुर्गादास ने चालीस सवारों के साथ महाराजा के परिवार को आगे रवाना कर स्वयं पचास आदमियों के साथ एक घन्टे तक मुग़लों को रोका। इसी बीच सन्ध्या हो गई। मुसलमान बहुत दूर चलने और लड़ाई लड़ने से थक चुके थे, इसलिए जब दुर्गादास घायल होकर अपने दल के बाक़ी बचे हुए केवल सात सवारों के साथ वहां से आगे निकला, तब मुग़ल सेना निराश हो उसका पीछा करना छोड़कर दिल्ली लौट गई। दुर्गादास कुंवर अजीत से फिर जा मिला और उसे २३ जुलाई (ई० स० १६७६) को मारवाड़ में ले आया।"

कर्नल[1] टॉड लिखता है:—

"बादशाह की फ़ौज़ आ पहुंचने पर जसवंतसिंह की राज-

कैम्ब्रज शॉर्टर हिस्ट्री ऑव् इंडिया; पृ० ४३१। स्मिथ; ऑक्सफ़ोर्ड हिस्ट्री ऑव् इंडिया; पृ० ४३८)।

१. टॉड; राजस्थान; जि० २, पृ० ६६२-६६३।

लोक (राणियां) स्वर्ग को भेज दिये गये। फिर राठोड़ों ने शत्रु पर आक्रमण किया। चन्द्रभान रघुनाथ आदि बहुतसे (राठोड़) मारे गए। दुर्गादास ने शत्रुओं को पीस डाला और अपनी इज्ज़त बचाई। राठोड़ों ने लड़ाई के बीच में से अजीतसिंह को बचा लिया और संदेह न हो इसलिए उसे एक मिठाई की टोकरी में छिपाकर एक मुसलमान के सुपुर्द किया, जिसने ईमानदारी से अपने कार्य को पूरा किया और अजीत को एक ऐसे निर्दिष्ट स्थान पर पहुंचा दिया, जहां दुर्गादास आदि कुछ मनुष्य लड़ाई में घायल होकर उस से फिर जा मिले।"

खाफ़ीखां[1] "मुन्तखबुल्लुबाब" में लिखता है:—

"राजपूत उस समय (दिल्ली में आने के बाद) राजा के बच्चों की उमर के और दो बच्चे ले आये और कुछ दासियों को राणियों के कपड़े पहनाकर उन्हें अपने डेरे में, जहां पहरा लग रहा था, रख दिया। असली राणियां मरदों के कपड़े पहनकर रात में कुछ विश्वस्त राजपूतों के साथ अपने देश को चली गईं। राजा के नक़ली बच्चे वहीं डेरे में रख दिये गये। यह खबर मालूम होने पर शाही अफ़सर अनुसन्धान करने के लिए भेजे गए तो यह ज्ञात हुआ कि राणियां और बच्चे वहीं पर हैं। तब हुक्म दिया गया कि राजा के सब आदमियों को क़िले में ले जाया जावे, जिसपर राजपूत और भेष बदले हुए औरतें लड़ीं। उन में से

१. इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० २९७-९८।

बहुतसे मारे गए परन्तु कुछ बच गए।"

आगे जाकर वह लिखता है कि राणियों का भागना प्रमाणित नहीं हुआ। कुछ आदमियों ने अपनी ग़फ़लत को छिपाने के लिए यह प्रगट किया कि लड़के (राजा के) भाग गये। दो नक़ली लड़के हरम में पालने के लिए दिये गए। राजपूतों-द्वारा ले जाये हुए उन दो बच्चों को बादशाह ने तब तक असली स्वीकार नहीं किया जब तक कि चित्तौड़ के राणा ने अपने वंश की लड़की का विवाह अजीतसिंह से न कर दिया।

उपर्युक्त उद्धरणों में से कोई भी भ्रमरहित नहीं प्रतीत होता। सच तो यह मालूम होता है कि दूरदर्शी दुर्गादास और सोनिंग आदि राठोड़ सरदारों ने, जो औरंगज़ेब की कूटनीति से भलीभांति परिचित थे, लड़ाई से पहिले ही मुकुन्ददास खीची के साथ महाराजा जसवंतसिंह के कुंवरों को गुप्तरूप से मारवाड़ में भेज दिया था[1]। रास्ते में दलथंभन मर गया। तब कोतवाल ने एक लड़का घोसी के घर से निकालकर बादशाह के समक्ष पेश किया और कहा कि

[1] कहते हैं कि युद्ध के पहिले ही मुकुन्ददास खीची कालबेल्या का भेप बनाकर एक पिटोरे में सांप और दूसरे में शिशुओं को रखकर दिल्ली से निकल गया था। एलफिन्स्टन-कृत 'हिस्ट्री ऑव् इंडिया', (पृ० ६२३) में असली राणी तथा बच्चों के गुप्तरूप से निकल जाना लिखा है। देखो इरविन्; लेटर मोगल्स; जि० १, पृ० ४४। किनकेड ऐन्ड पार्सिनिज़; हिस्ट्री ऑव् दी मरहटा पिप्ल; जि० २, पृ० ८।

वही जसवंतसिंह का पुत्र है । वादशाह ने उसे अपनी वेटी को पालने के लिए सौंपा और उसका नाम मुहम्मदीराज रक्खा। संभव है कोतवाल ने अजीतसिंह के निकल जाने पर अपना दोष छिपाने के लिए दूसरे लड़के को पकड़कर वादशाह के पास पेश किया, अथवा वादशाह ने ही दुर्गादास-द्वारा रक्षा किये गए वालक अजीत को वनावटी जतलाने के लिए इस लड़के को असली प्रगट किया हो । राणियों को पुरुषों के कपड़े पहनाने का अभिप्राय यह प्रतीत होता है कि वे पुरुषों के साथ पुरुष वनकर शत्रुओं के मन में संदेह पैदा न करती हुई वहां से निकल जावें, परंतु जव राठोड़ों को यह उद्देश्य सफल होने की संभावना नहीं दीख पड़ी, तव उन्होंने राणियों के सिर अपने हाथ से उड़ा दिये, ताकि वे मुसलमानों के हाथ में न पड़ें। ऐसे उदाहरण राजपूतों के इतिहास में वहुधा पाये जाते हैं ।

अजीतसिंह को मारवाड़ में कहीं भी ठहरने का स्थान न मिला, क्योंकि सव जगह शाही थाने स्थापित हो गये थे। राठोड़ तव शिशु अजीत को लेकर उदयपुर के महाराणा राजसिंह के पास गये और कुछ समय तक मेवाड़ में ठहरकर पीछे सिरोही में महाराजा जसवंतसिंह की राणी देवड़ी के पास गये और अजीत को कालिन्द्री ग्राम में पुष्करणा ब्राह्मण जयदेव की स्त्री के सुपुर्द किया। वह ब्राह्मणी अजीत को अपना वेटा मानकर पालने लगी और मुकुन्ददास खीची की देखरेख में अजीतसिंह

प्रायः आठ वर्ष तक उसके घर पर रहा।

औरंगज़ेब का मारवाड़ पर अधिकार करना—

हम पहले कह आये हैं कि महाराजा जसवंतसिंह की मृत्यु ई० स० १६७८ के नवंबर (वि० सं० १७३५ के पौष) मास में जमरूद में हुई थी। उसकी खबर दिल्ली में बादशाह के पास उसी महीने के चौथे सप्ताह में पहुंची। सुनते ही बादशाह ने जोधपुर राज्य की भावी व्यवस्था अपने मन में निश्चित कर ली। यद्यपि उस समय महाराजा जसवंतसिंह का कोई पुत्र राज्य करने योग्य न था, परन्तु उसके बड़े भाई अमरसिंह का पोता (नागोर के राव रायसिंह का बेटा) इन्द्रसिंह विद्यमान था और उसका बादशाह के दरबार में यथेष्ट सम्मान भी था। यदि औरंगज़ेब चाहता कि जोधपुर का हिन्दू-राज्य क़ायम रहे तो वह उसी समय इन्द्रसिंह को राठोड़ों का राजा बनाकर जोधपुर भेजता, परन्तु जसवंतसिंह की मृत्यु के बाद पांच महीने तक उसने जोधपुर की गद्दी पर किसी को भी नियुक्त नहीं किया, किन्तु इसके विपरीत मृत्यु-संवाद पाते ही उस राज्य पर अपना अधिकार कर लेने की दृष्टि से उसने मुग़ल अफ़सर जोधपुर रवाना किये।

दिल्ली में पहुंचने के बाद राठोड़ दुर्गादास, रणछोड़दास

आदि बादशाह के दीवान असदख़ां और सरबुलन्दख़ां के पास जाया करते थे। एक दिन उन्होंने कहा कि बादशाह सोजत और जेतारण राजा के बेटे (अजीत) को देना चाहते हैं सो ५०० राठोड़ सवार बादशाह की नौकरी करें; राजा के बड़े-बड़े उमरावों को अलग मनसब दिये जावेंगे। यह बात दुर्गादास ने स्वीकार नहीं की। उसने कहा कि बादशाह को जितना भी देना है, राजा के बेटे (अजीत) को दे। प्रायः इसी समय महाराजा जसवंतसिंह के उमरावों ने अजमेर के शाही अफ़सर बहादुरख़ां को लिखा कि आपने कहा था कि बादशाह महाराजा के बेटे को जोधपुर देंगे। तब बहादुरख़ां ने बादशाह को इस आशय की एक अर्ज़ी लिखी कि जसवंतसिंह के बेटे को जोधपुर देना चाहिए। इस पर बादशाह उससे बड़ा नाराज़ हुआ। अन्त में बहादुरख़ां को दिल्ली जाकर बादशाह से माफ़ी मांगनी पड़ी[1]। इसी प्रकार बादशाह ने क्रुद्ध होकर दूसरे अफ़सर ख़ानेजहां को भी पद से उतार दिया, क्योंकि उसने महाराजा जसवंतसिंह के लड़के को जोधपुर दिलाने के लिए सिफ़ारिश की थी। बादशाह केवल यही उत्तर देता था कि बालक अजीत पालने के लिए उसके हरम (महल) में रक्खा जावे और जब वह बड़ा हो जावेगा तब उसे मुग़ल अमीरों में पद दिया जावेगा और वह राजा बनाया जावेगा। एक इतिहास लेखक ने लिखा

१. जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० २, पृ० १९-१६।

है कि वादशाह ने अजीतसिंह को इस शर्त पर कि वह मुसलमान हो जावे जोधपुर देना स्वीकार किया था[1]। यह कोई आश्चर्य की वात नहीं है, क्योंकि औरंगज़ेव का विचार कुछ ऐसा ही था। थोड़े ही समय पहले उसने जोगीगढ़, देवगढ़ और मऊ की ज़मींदारी उन्हीं हक़दारों को दी थी जो मुसलमान वनने के लिए राजी हो गए थे। वादशाह के उक्त विचार का समर्थन एक दूसरी वात से भी होता है। उसने उस नक़ली अजीतसिंह को, जिसको उसने अपने महल में रक्खा था, मुसलमान की तरह ले पाला और उसका मुसलमानी नाम भी रक्खा।

वि० सं० १७३५ फाल्गुन सुदि १३ (ई० स० १६७६ ता० २३ फ़रवरी) को वादशाह ने ताहिरखां को जोधपुर की फ़ौजदारी, खिदमतगुज़ारखां को क़िलेदारी, शेख़ अनवर को अमानत और अब्दुर्रहीम को कोतवाली देकर मारवाड़ में भेजा और ख़ानेजहां वहादुर को हसनअलीखां आदि सरदारों समेत मारवाड़ पर क़ब्ज़ा करने, मंदिरों को तोड़ने तथा महाराजा जसवंतसिंह की संपत्ति हस्तगत करने के लिए रवाना किया। फिर सैय्यद अब्दुल्ला को सिवाने के क़िले पर जसवंतसिंह का असवाव संभालने के लिए भेजा। इस तरह वादशाह ने सारा मारवाड़ अपने शासन में रक्खा। फिर वह स्वयं दिल्ली से अजमेर की तरफ़ रवाना हुआ ताकि जोधपुर के पास रहकर

१. सरकार; औरंगज़ेब; जि० ३, पृ० ३७४।

लोगों के मन में डर पैदा कर सके तथा वहां की व्यवस्था कर सके। उसने शाइस्ताखां, वज़ीर असदख़ां और शाहज़ादा अकबर को मदद के लिए अजमेर बुला लिया, परंतु लोगों को बतलाने के लिए इतनी बड़ी सेना की आवश्यकता नहीं थी। महाराजा जसवंतसिंह की अचानक मृत्यु होने से सब राठोड़ घबरा गए थे। उनके देश का कोई राजा न था। जसवंतसिंह के बड़े-बड़े अफ़सर और अच्छी लड़नेवाली सेना अफ़गानिस्तान में पड़ी हुई थी, जिससे राठोड़ों के लिए सुशिक्षित और सुसज्जित मुग़ल सेना का सामना करना बड़ा कठिन काम था।

मारवाड़ में पहुंचकर खिदमतगुज़ारखां अपने आदमियों के साथ सिवाने के क़िले में घुसा, जहां मारवाड़ के राजाओं का ख़ज़ाना रहता था, परन्तु इधर-उधर ढूंढ़ने पर थोड़ेसे पुराने कपड़ों के अतिरिक्त और कुछ भी संपत्ति उसके हाथ न लगी। तब एक दूसरा अफ़सर गड़े हुए धन की खोज में क़िले की दीवारों के नीचे, महलों के भीतर और आंगन में खोदने के लिए कारीगरों के साथ भेजा गया। शाही दीवान को हुक्म दिया गया कि वह जोधपुर जाकर महाराजा जसवंतसिंह की सम्पत्ति तथा मारवाड़ के भिन्न-भिन्न स्थानों की आमदनी की एक तालिका बनावे। खानेजहां जोधपुर पर क़ब्ज़ा करने तथा वहां के मंदिरों को तोड़ने के बाद बादशाह के पास लौट गया।

बादशाह ने उसकी बड़ी प्रशंसा की । बैलगाड़ियों में भरकर जो मूर्तियां मारवाड़ से लाई गई थीं, वे सब दिल्ली के क़िले में और जुमामसजिद के नीचे पैरों से कुचलवाने के लिए डाल दी गईं ।

इस प्रकार मारवाड़ पर क़ब्ज़ा करने का पूरा बन्दोबस्त हो चुका और बादशाह ने देखा कि वहां के लोग मुग़लों का सामना करने में बिलकुल असमर्थ हैं, तब वह ई० स० १६७६ तारीख़ २ अप्रेल (वि० सं० १७३६ वैशाख सुदि २) को अजमेर से दिल्ली लौट गया, और उसी दिन जज़िया[1] का लगान, जो कि हिन्दुस्तान में प्रायः सौ वर्ष से बंद था, हिन्दुओं पर लगा दिया गया । फिर बादशाह ने लोगों को शान्त करने के लिए ई० स० १६७६ ता० २६ मई (वि० सं० १७३६ ज्येष्ठ वदि १२)[2] को राठोड़ इन्द्रसिंह को, जिसने ३६ लाख रुपये बादशाह

---

१. यह कर शुरू में हज़रत मुहम्मद पैग़म्बर ने जारी किया था । उसके पीछे ख़लीफ़ा उमर ने ख़र्च की तंगी से इसे लोगों पर लगाया, परन्तु ब्राह्मणों, स्त्रियों और बच्चों से यह कर नहीं लिया जाता था । फ़ीरोज़शाह तुग़लक ब्राह्मणों से भी लेने लगा । बादशाह अकबर ने इसे एक प्रकार का ज़ुल्म समझकर इसका लेना बन्द कर दिया। पीछे से आलमगीर ने इसे लोगों से जबरन वसूल करने का हुक्म दिया, परन्तु उसकी मृत्यु के बाद बादशाह फ़र्रुख़सियर को इस कर का लेना बन्द करना पड़ा ।

२. जोधपुर राज्य की ख्यात (पृ० ३८) में यह तिथि भाद्रपद सुदि ७ है ।

को भेंट किये थे, जोधपुर का राजा बनाकर मारवाड़ में भेज दिया, परन्तु उसकी सहायता के लिए मुसलमान हाकिम और मुग़ल सेना वहीं रक्खी गई।

जो सेना अजमेर में जमा हुई थी वह फिर अपने-अपने ठिकाने भेज दी गई, क्योंकि अब बादशाह का मतलब पूरा हो चुका था। परन्तु मारवाड़ को इस तरह दबाने से शान्ति थोड़े ही होने वाली थी। रणबंका राठोड़ बादशाह से इस तरह दबनेवाले न थे।

कुछ राठोड़ सरदार नेता बनने की इच्छा से देश में हलचल मचाने को तैयार हो गए। ये सरदार बादशाह के सुशासन तथा मुग़ल सेना की सहायता से थोड़े समय में ही दबाये जा सकते थे, परन्तु दुर्गादास जैसे वीर, प्रभुभक्त और निस्स्वार्थी राठोड़ नेता उनके ऊपर होने से मारवाड़ में हिन्दू राज्य का अस्तित्व मिटा देना बादशाह के लिए बड़ा कठिन काम था। इसके अतिरिक्त महाराजा अजीतसिंह के पैदा होने से मारवाड़ की स्थिति ही कुछ और हो गई थी। शाही हुकूमत में विघ्न डालने तथा बादशाह का मतलब पूरा न होने देने के लिए ही अजीतसिंह का जन्म हुआ था।

जब बादशाह ने देखा कि मारवाड़ में अशान्ति कुछ कम नहीं हुई, इन्द्रसिंह राठोड़ों पर शासन कर नहीं सकता और अजीतसिंह के हाथ से निकल जाने से उसका उद्देश्य नष्ट हो

रहा है, तब उसने मारवाड़ को सीधा अपनी ही हकूमत में करना चाहा। उसने जोधपुर के फ़ौजदार ताहिरख़ां को पदच्युत कर दिया, क्योंकि वह दुर्गादास को मारवाड़ से बाहर निकाल न सका था। राव इन्द्रसिंह, जो कि प्रायः दो महीने के लिए मारवाड़ का राजा बना था, गद्दी से उतार दिया गया, क्योंकि उस से पचास हज़ार राठोड़ों पर शासन करने का काम न हो सका।

बादशाह ने ई० स० १६७९ ता० १७ अगस्त (वि० सं० १७३६ भाद्रपद बदि ६) को सरबुलंदख़ां की अध्यक्षता में एक बड़ी फ़ौज मारवाड़ में भेजी और पन्द्रह दिन बाद स्वयं अजमेर को रवाना हुआ। राठोड़ों को चारों तरफ़ से शत्रुओं ने घेर लिया। क़त्लेआम शुरू हुआ, और चारों ओर हाहाकार मच गया। इस समय मौक़ा पाकर पड़िहार (प्रतिहार) राजपूत जो राठोड़ों के विरोधी थे, अपनी पुरानी राजधानी मंडोर का क़िला छीनकर मारवाड़ में फिर अपना राज्य जमाने की चेष्टा करने लगे।

बादशाह ने अजमेर में बड़ी भारी फ़ौज एकत्र की और २५ सितंबर को स्वयं अजमेर जा पहुंचा। दूसरा महीना रमज़ान होने के कारण वह स्वयं चुपचाप बैठा रहा, परन्तु उसकी सेना शाहज़ादा अकबर की अध्यक्षता में आगे बढ़ी। अजमेर का फ़ौजदार तहव्वरख़ां मुग़ल सेना का हरावल (आगे का हिस्सा) संभालता रहा। मेड़तिया राठोड़ राजसिंह ने अपने राठोड़ों

सहित पुष्कर में वराह के मंदिर के सामने मुग़ल सेना का रास्ता रोका। तीन दिन तक लड़ाई होती रही। बहुतसे राठोड़ मारे गए। दोनों तरफ़ लाशों का ढेर लग गया। यह घटना वि० सं० १७३६ भाद्रपद वदि ११ (ई० स० १६७६ ता० २१ अगस्त) को हुई। मुग़लों के साथ राठोड़ों का यह अन्तिम खुला युद्ध था, इसके बाद वे सर्वदा पहाड़ों और रेगिस्तानों में रहकर मौक़े-मौक़े से युद्ध करते रहे।

शाही सेना का मुख्य नेता शाहज़ादा अकबर अजमेर से रवाना होता हुआ मारवाड़ में घुसा और मेड़ता पहुंचा। राठोड़ों ने उसे रास्ते में रोकना चाहा, परन्तु उनकी संख्या मुसलमानों की अपेक्षा बहुत कम थी, इसलिए वे कुछ कर न सके और सारे मारवाड़ पर मुसलमानों का अधिकार हो गया। कहते हैं कि जिस तरह पृथ्वी पर मेह बरसता है, उसी तरह बादशाह ने मारवाड़ में सेना भेजी।

बादशाह ने मारवाड़ को कई प्रदेशों में विभक्त कर दिया और प्रत्येक पर मुसलमान फ़ौजदार नियुक्त कर दिया। उसकी सेना ने जोधपुर, मेड़ता, डीडवाना, रोहट आदि बड़े-बड़े शहरों को ले लिया और हिन्दुओं की धर्मसंबन्धी चीज़ों को पैरों से कुचल डाला। मंदिर तोड़ डाले गए और उनके स्थान में मसजिदें बनवा दी गईं। वास्तव में यह बड़ा अत्याचार था और अन्त में इसका परिणाम बादशाह के लिए बहुत ही घातक

सिद्ध हुआ, क्योंकि इस समय से राठोड़ और सीसोदिये हिन्दू-धर्म की रक्षा के लिए एक हो गये। उदयपुर के महाराणा राजसिंह ने अजीतसिंह का पक्ष लिया, क्योंकि वह अजीत का संबंधी था[1] और ई० स० १६७६ के नवंबर (वि० सं० १७३६ के कार्तिक) मास के अन्त में मुग़लों के साथ के युद्ध ने एक नया रूप धारण किया, जिसका वर्णन आगे किया जावेगा।

महाराणा के साथ बादशाह की लड़ाई—

बादशाह जहांगीर के समय से ही मेवाड़ के महाराणा मुग़ल बादशाहों के शुभचिंतक थे। यद्यपि महाराणा स्वयं बादशाह के दरबार में सिर झुकाने कभी नहीं जाते थे, तथापि वे इस काम के लिए अपने छोटे भाई या लड़के को भेजकर बादशाह को भेंट पहुंचाते रहते थे। बादशाह भी उन्हें सिरोपाव (इज़्ज़त की पोशाक), हाथी, घोड़े आदि भेजता रहता था। आवश्यकता होने पर महाराणा की फ़ौज भी बादशाह की तरफ़ से लड़ती थी।

1. अजीतसिंह की एक सौतेली मा हाड़ी राणी जसवंतदे महाराणा राजसिंह की साली थी। दूसरी सौतेली मा राणी सीसोदनी जस-सुखदे (वीरमदेव की बेटी) राजसिंह की बहिन लगती थी। उदयपुर के महाराणा अमरसिंह (प्रथम) के एक पुत्र कर्णसिंह का पौत्र राजसिंह था और दूसरे पुत्र सूरजमल की पौत्री सीसोदनी जससुखदे थी, जिसका विवाह महाराजा जसवंतसिंह से हुआ था।

इस तरह परस्पर अच्छा व्यवहार था, परन्तु अब बादशाह औरंगज़ेब के साथ मेवाड़ के महाराणा का बरताव कुछ और ही हो गया, जिसके कई कारण थे जो नीचे लिखे जाते हैं:—

पहला—किशनगढ़ के राजा राठोड़ रूपसिंह की लड़की चारुमती से औरंगज़ेब विवाह करना चाहता था, किन्तु चारुमती को यह बात पसन्द नहीं आई क्योंकि वह परम वैष्णव थी। उसने महाराणा राजसिंह से बड़ी कातरता के साथ अपने धर्म और मर्यादा की रक्षा करने के लिए प्रार्थना की। इसपर महाराणा ने वि० सं० १७१७ (ई० स० १६६०) में सेना सहित किशनगढ़ जाकर उससे विवाह कर लिया[1]। इस बात पर बादशाह महाराणा से बहुत नाराज़ हुआ।

दूसरा—बादशाह औरंगज़ेब की बहुत दिनों से हिन्दुओं पर जज़िया नामक कर लगाने की इच्छा थी, परन्तु जोधपुर के राजा जसवंतसिंह और आंबेर के राजा जयसिंह की जीवितावस्था में उसको वह सुयोग नहीं मिल सका, जो अब दोनों की मृत्यु (जसवंतसिंह की जमरूद में और

---

१. शते सप्तदशे पूर्णे वर्षे सप्तदशे ततः।
गत्वा कृष्णगढे दिव्यो महत्या सेनया युतः॥ २६॥
दिल्लीशार्थं रक्षिताया राजसिंहनरेश्वरः।
राठोडरूपसिंहस्य पुत्र्याः पाणिग्रहं व्यधात्॥ ३०॥
इंडियन ऐन्टिक्वेरी, जि० ६० पृ० ५२।
टॉड राजस्थान; जि० १, पृ० ४४०-४१।

जयसिंह की बुरहानपुर में) होने से मिला। ई० स० १६७६ ता० २ अप्रेल (वि० सं० १७३६ वैशाख सुदि २) को बादशाह औरंगज़ेब ने सब हिन्दुओं पर जज़िया लगा दिया, जिससे सब जगह असंतोष फैल गया। दिल्ली में हज़ारों आदमी बादशाह के पास इसके विरुद्ध अर्ज़ करने गये। एक दिन जब बादशाह जुमा मसजिद जा रहा था, हिन्दू लोगों की भीड़ से उसे रास्ता नहीं मिला। गुरज़बरदारों ने बहुतसे आदमियों के हाथ पैर तोड़ डाले। फिर भी हिन्दू न हटे। अन्त में सवारी के आगे एक हाथी किया गया, जिसकी टक्कर से बहुतसे आदमियों को नुक़सान पहुंचा, परंतु आलमगीर ने जज़िया माफ़ करने का हुक्म न दिया। हिंदुओं की इस उचित मांग का इतनी बुरी तरह अनादर होने का समाचार सुनकर महाराणा राजसिंह को बहुत दुःख हुआ और उसने यह सोचा कि हिन्दुओं को असहाय जानकर ही यह कर उनपर लगाया गया है। अपने राज्य में जज़िया लगाने के बाद बादशाह ने महाराणा राजसिंह को भी मेवाड़ में यह कर लगाने का हुक्म दिया[1]। महाराणा ने यह देखकर एक पत्र बादशाह के नाम भेजा, जिसका सारांश यह था:—

"मैं आपका शुभचिंतक हूं और मैंने पहले आपकी सेवा की है, इसलिए कुछ बातों की तरफ़ जिसमें आपकी और

1. जदुनाथ सरकार; औरंगज़ेब, जि० ३, पृ० ३८३। इलियट; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० २९८।

प्रजा की भलाई है, आपका ध्यान दिलाता हूं। मैंने सुना है कि आपने एक कर (जज़िया) लगाने की आज्ञा दी है। आपके पूर्वज अकबरशाह ने बावन वर्ष तक राज्य किया, प्रत्येक जाति को सुख और आराम पहुंचाया, जिससे जनता ने उसे 'जगद्गुरु' की उपाधि दी थी। उसके बाद जहांगीर और शाहजहां ने अपने राजत्वकाल में दया और न्याय दिखाकर यश प्राप्त किया। आप के पूर्वज इन भलाई के कामों के कारण जिधर पैर उठाते थे उधर ही उनकी विजय होती थी। बहुतसे देश और क़िले उनके अधीन हो गये थे, परन्तु आपके समय में कई प्रदेश आपके हाथ से चले गये और जाते रहेंगे। आपकी प्रजा पैरों के नीचे कुचली जा रही है और आपका राज्य कंगाल हो रहा है। कष्ट बढ़ते जाते हैं, व्यापारी और सेना असन्तुष्ट है, हिन्दू दुःखी हैं और मुसलमान भी असन्तुष्ट हैं। लोग रात को भोजन न मिलने के कारण निराश होकर सिर पीटते हैं। ऐसी दरिद्र प्रजा से जो बादशाह ज़बरदस्ती कर लेता है, उसका महत्व किस प्रकार स्थिर रह सकता है ? परमात्मा मनुष्यमात्र का ईश्वर है, केवल मुसलमानों का नहीं। उसकी दृष्टि में मूर्तिपूजक और मुसलमान समान हैं। लोग मसजिदों में उसी का नाम लेकर नमाज़ पढ़ते हैं और मंदिरों में मूर्तियों के आगे घन्टा बजाकर उसी की प्रार्थना करते हैं। इसलिए किसी धर्म को उठा देना ईश्वर की इच्छा का विरोध करना है।

किसी चित्र को बिगाड़ना उसके बनानेवाले को अप्रसन्न करना है। तात्पर्य यह है कि आपने जो कर हिन्दुओं पर लगाया है, वह न्याय और नीति के विरुद्ध है। यदि आपको स्वधर्म के आग्रह ने यह कर लगाने को प्रेरित किया है तो सबसे पहिले हिन्दुओं के मुखिया रामसिंह से यह कर वसूल करें, फिर मुझ से......[1]।"

तीसरा—युद्ध का सबसे मुख्य कारण यह हुआ था कि महाराणा ने अजीतसिंह को शरण दी थी[2]। दुर्गादास आदि राठोड़ों ने सोचा कि अकेले आलमगीर की सेना का मुक़ाबला कर सकना असंभव है इसलिए वे अजीतसिंह को लेकर उदयपुर चले गये। महाराणा राजसिंह ने अजीतसिंह को ठहरने के लिए बारह गांवों सहित केलवे का पट्टा देने के बाद दुर्गादास को तसल्ली देकर कहा कि सीसोदियों और राठोड़ों की सम्मिलित सेना

---

१. टॉ० रा०; जि० १, पृ० ४४२ टिप्पणी २। इस पत्र के लिखे जाने के विषय में विद्वानों में मतभेद है (देखो स्मिथ; ऑक्सफ़ोर्ड हिस्ट्री ऑव् इंडिया, पृ० ४३६ टिप्पणी १)। महामहोपाध्याय रायबहादुर पंडित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने इसे उदयपुर के महाराणा राजसिंह का लिखा हुआ माना है (देखो राजपूताने का इतिहास; जि० २, पृ० ५५१-५४)।

२. डडवेल; कैम्ब्रिज शॉर्टर हिस्ट्री ऑव् इंडिया, पृ० ४३२। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८३०। टॉ० रा०; जि० १, पृ० ४४२; जि० २, पृ० ९९६।

को औरंगज़ेब सहज ही में दबा नहीं सकेगा, अतएव सब लोग निश्चिन्त रहें। इस तरह महाराणा के द्वारा अजीतसिंह की रक्षा होना बादशाह को सहन नहीं हुआ। वह अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा और उसने महाराणा से युद्ध करने का विचार स्थिर कर लिया, क्योंकि महाराणा ने बादशाह के मांगने पर भी अजीतसिंह को सौंपना स्वीकार नहीं किया था[1]।

मारवाड़ पर मुग़लों का अधिकार हो जाने से मेवाड़ पर उनका आक्रमण होना अधिक सुगम हो गया था। बादशाह का मंदिरों को तोड़ना भी उसी प्रकार जारी था। उसने बनारस, मथुरा, सोमनाथ आदि कई प्रसिद्ध स्थानों के मंदिरों को तुड़वा डाला था। महाराजा जसवंतसिंह की मृत्यु के पहिले भी राजपूताने में कई बड़े-बड़े मंदिर तुड़वाये गये थे और उस (जसवंतसिंह) की मृत्यु के बाद तो जोधपुर के बहुतसे मंदिर तुड़वाकर वहां की मूर्तियां दिल्ली में लाई जाकर पैरों से कुचलवाई गईं। फिर मेवाड़ में जज़िया लगाने का हुक्म दिया गया। ऐसी दशा में महाराणा ने सोचा कि यदि अब सीसोदिये राठोड़ों से मिलकर काम न करेंगे तो बादशाह दोनों को अलग-अलग तौर पर नष्ट कर डालेगा और सारा प्रदेश उसके अधिकार में चला जावेगा। साथ ही महाराणा ने पितृहीन बालक (अजीत) की रक्षा करना भी अपना कर्तव्य समझा।

१. इलियट; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० २९८।

अब महाराणा के लिए केवल दो ही मार्ग रह गये। या तो वह बादशाह से लड़ने के लिए तैयार हो जाय, या मनुष्य की सार वस्तु 'धर्म' का परित्याग कर दे। महाराणा के कुछ सरदार तो पहिले ही से गोड़वाड़ ज़िले में राठोड़ों की तरफ़ से तहव्वरखां के विरुद्ध लड़ते थे, अब वह स्वयं युद्ध करने के लिए प्रस्तुत हो गया।

फ्रांसीसी लेखक मनूकी[1] का कथन है कि बादशाह ने महाराणा राजसिंह के पास एक दूत भेजकर उसे निम्नलिखित बातें पालन करने को कहा:—

(१) महाराणा अपनी लड़की का विवाह बादशाह के लड़के से करे।

(२) महाराणा बादशाह के नाम के सिवा अपने नाम के सिक्के न बनवावे।

(३) महाराणा अपने राज्य में गो-वध न रोके।

(४) महाराणा मंदिरों को तुड़वाकर उनकी जगह मसजिदें बनवा दे।

(५) महाराणा क़ाज़ी के आधिपत्य को स्वीकार करे अर्थात् क़ुरान के उपदेशों का प्रचार करावे।

यदि वह इन बातों को स्वीकार न करे तो अपना राज्य छोड़ दे।

---

१. मनूकी; स्टोरिया डी मोगर; जि० २, पृ० २३६-३८।

महाराणा राजसिंह ने इन बातों का जो उत्तर दिया उसका सारांश यह है:—

पहली बात पर उसने यह लिखा कि महाराणाओं में अपनी लड़कियों के विवाह मुगल बादशाहों के साथ करने की प्रथा कभी नहीं थी। इसलिए महाराणा इस नियम को किसी हालत में भी तोड़ नहीं सकता और न अपने वंश की मर्यादा को मिटा सकता है।

दूसरी बात का यह उत्तर दिया गया कि पुराने समय से ही मुगल बादशाहों ने महाराणाओं को जो अधिकार दिये हैं, बादशाह (औरंगज़ेब) की आज्ञा उसके बिलकुल विरुद्ध है।

तीसरे और चौथे विषय पर उसका यह कहना था कि स्वयं बादशाह को इस बातपर विचार कर लेना उचित है कि एक राजा किस तरह उन बातों का पालन कर सकता है जो सैकड़ों वर्षों से हिन्दुस्तान में चले आनेवाले धर्म के विरुद्ध हों।

महाराणा का शेष निवेदन यह था कि वह बादशाह की तीसरी और चौथी बातों से सहमत नहीं हो सकता, इसलिए पांचवीं बात को भी वह मान नहीं सकता। हर एक धर्म में अपने-अपने अनुकूल उपदेश हैं। फिर राज्य छोड़ने के विषय पर महाराणा की यह उक्ति थी कि न्यायरूप से अर्जित अपने पैतृक राज्य को वह छोड़ नहीं सकता।

मनूकी का उपर्युक्त कथन अधिकतर भ्रमपूर्ण ही प्रतीत होता है, क्योंकि उसका उल्लेख और कहीं नहीं मिलता है। औरंगज़ेब और राजसिंह के बीच में युद्ध होने के जो कारण ऊपर दिये गये हैं वे ही बहुधा इतिहासों में मिलते हैं।

वि० सं० १७३६ भाद्रपद सुदि ८ (ई० स० १६७६ ता० ३ सितंबर) को बादशाह एक बड़ी सेना के साथ दिल्ली से उदयपुर की तरफ़ चला। उसी दिन उसने शाहज़ादा मुहम्मद अकबर को आगे रवाना किया कि वह अजमेर में जाकर ठहरे। बादशाह अजमेर पहुंचकर ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की ज़ियारत करने के बाद शाहजहां के बनवाये हुए महलों में आनासागर की पाल पर ठहरा। वहां से उसने तहव्वरख़ां को ख़िलअत, हाथी, तोपें आदि देकर मांडल, नागोर के राव इन्द्रसिंह को नीमच और रघुनाथसिंह को सिवाणा आदि स्थानों पर भेजा तथा मोहकमसिंह मेड़तिये को पुर की थानेदारी पर फ़ौज के साथ रवाना किया। उसने एक फ़रमान दक्षिण में शाहज़ादे मुअज्ज़म के नाम लिखा कि शीघ्र ही वह उज्जैन पहुंचकर व्यवस्था करे। दूसरा फ़रमान बंगाल में आज़म के पास भेजा गया कि जिस तरह भी हो वह जल्दी बादशाह के पास उपस्थित हो जाय। इस तरह पूरा प्रबन्ध करके बादशाह ने वि० सं० १७३६ मार्गशीर्ष सुदि ६ (ई० स० १६७६ ता० १ दिसंबर) को अजमेर से उदयपुर

की तरफ़ कूच किया। उसी दिन मेड़ता की तरफ़ से शाहज़ादा मुहम्मद अकबर भी उसके पास हाज़िर हुआ। बादशाही लश्कर के मेवाड़ की सीमा में पहुंचने पर शाहज़ादा आज़म भी बादशाह की सेना में उपस्थित हो गया। उसने चार महीने के रास्ते को एक महीने से भी कम में पार किया। कुछ दिन तक मांडल में ठहरने के बाद उदयपुर की तरफ़ चढ़ाई का हुक्म हुआ। यह ख़बर जब महाराणा राजसिंह के पास पहुंची तब उसने अपने सब सरदारों, उमरावों और कुंवरों को दरबार में बुलाकर सलाह की। राजपुरोहित गरीबदास, राठोड़ दुर्गादास, राठोड़ सोनिंग आदि बहुतसे लोग उपस्थित थे। सब ने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार परामर्श दिया। जब सब अपना-अपना मत प्रकाश कर चुके तो पुरोहित गरीबदास ने निवेदन किया कि राजपूतों का यही धर्म है कि वे अपने बल से बढ़कर जवाब दें, क्योंकि जिसे मरने की चिन्ता नहीं वह हानि-लाभ का विचार नहीं करता। मेरी समझ में बादशाह से बराबरी के तौर पर लड़ना ठीक नहीं है, क्योंकि पहले भी जब बादशाह अकबर से काम पड़ा था, तब महाराणा प्रतापसिंह और महाराणा उदयसिंह चित्तोड़ और उदयपुर छोड़कर पहाड़ों में चले गये थे। दिन या रात जिस समय मौक़ा पाते वे शाही सेना पर छापा मारते, बादशाही मुल्क नष्ट करते और जब विकट पहाड़ों में शाही फ़ौज आती, तब घाटियों में जहां

पर बादशाही तोपखाने, हाथी, घोड़े आदि बिलकुल बेकाम रहते थे, मौके-मौके से सामना करते। इन्हीं कारणों से बादशाह अकबर, जहांगीर और शाहजहां को तंग होकर उनसे सुलह करनी पड़ी। इसलिए आपको भी चाहिये कि उदयपुर छोड़कर पहाड़ों में चले जावें और अपने बहादुर राजपूतों को चारों तरफ़ से सामना और धावा करने तथा बादशाही देश को लूटने की आज्ञा देवें। भीलों को भी बादशाही लश्कर की रसद लूटने पर तैयार रहने की आज्ञा दी जाय। महाराणा राजसिंह को यह सलाह पसन्द आई और उसी समय उसने शहर के निवासियों सहित अपने कुंवरों और परिवार को उदयपुर से रवाना करके देवीमाता के पहाड़ों में, जो उदयपुर से दक्षिण की तरफ़ चार कोस पर है, डेरा किया। दूसरा मुकाम भोमट के ज़िले में पहाड़ों के बीच नेणवारे गांव में हुआ, जहां मेवाड़ और मारवाड़ के राजपूतों के बाल-बच्चे और दोनों देशों की प्रजा रही। इन सब की रक्षा का भार महाराणा पर ही था। बड़ा कुंवर जयसिंह चारों तरफ़ की फ़ौजों की मदद के लिए तेरह हज़ार सवारों सहित नियुक्त हुआ। बदनोर का ठाकुर राठोड़ सांवलदास, देसूरी का सोलंकी विक्रमादित्य और घाणेराव का मेड़तिया गोपीनाथ बदनोर, देसूरी और घाणेराव के पहाड़ी ज़िलों की तरफ़ भेजे गये। दूसरे कुंवर भीमसिंह को एक फ़ौज का अफ़सर बनाकर गुजरात की तरफ़ भेजा गया और भील

सरदारों को हुक्म दिया गया कि वे अपने-अपने ज़िले के भीलों सहित तीर-कमान लेकर घाटों और नाकों का बन्दोबस्त करें और रसद लूट-लूटकर महाराणा के पास पहुंचावें।

इस प्रकार मेवाड़ में युद्ध का प्रबन्ध हुआ। बादशाह ने जब मांडल से कूच किया, उसी समय देवारी के घाटे से आदमियों के उठ जाने तथा महाराणा के उदयपुर छोड़कर पहाड़ों में चले जाने की ख़बर उसे मिली। फिर अमीनखां ने बादशाह से अर्ज़ की कि मेरे नौकर पहाड़ों पर चढ़कर देख आये हैं कि उदयपुर के आसपास कोई भी मनुष्य दिखाई नहीं पड़ता।

बादशाह बहुत बड़ी फ़ौज के साथ वि० सं० १७३६ माघ वदि ८ (ई० स० १६८० ता० १४ जनवरी) को देवारी के पास जा पहुंचा और उसने शाहज़ादा आज़म तथा ख़ानेजहां बहादुर को शत्रु की गति निरीक्षण करने के लिए तथा शाहज़ादा अकबर को चालीस हज़ार की क़ीमत का सरपेच देकर उदयपुर की तरफ़ भेजा। हसनअलीखां सात हज़ार सेना के साथ महाराणा का पीछा करने के लिए पहाड़ों की तरफ़ रवाना किया गया। तहव्वरखां[1] को "बादशाहकुलीखां" का ख़िताब दिया गया। हसनअलीखां राजपूत सेना की खोज में उदयपुर से उत्तर-पश्चिम के पहाड़ी प्रदेशों में घुसा। थोड़े समय बाद उसके पास से

१. इसका नाम पहले शाहकुलीख़ां था।

ख़बर आनी बिलकुल बन्द होगई, जिससे शाही डेरे में बड़ी चिन्ता फैल गई। दूसरे अफ़सर उसकी खोज में जाने से इनकार करते थे। अन्त में शिहाबुद्दीन नामक एक अफ़सर हसनअलीख़ां का पता लगाने के लिए तैयार हुआ। वह पहाड़ों में घुसकर हसनअलीख़ां के डेरे में जा पहुंचा और उसकी ख़बर बादशाह के पास लाया, जिससे बादशाह ने बहुत खुश होकर उसका पद बढ़ा दिया[1]।

वि० सं० १७३६ माघ सुदि ४ (ई० स० १६८० ता० २५ जनवरी) को बादशाह उदयसागर की पाल पर गया जहां उसने महाराणा उदयसिंह के बनवाये हुए तीन मंदिरों को गिरवा दिया। वहीं उसे मालूम हुआ कि महाराणा की सेना पर हसनअलीख़ां ने आक्रमण किया था, जिससे राजपूतों का बहुतसा सामान उसके हाथ लगा। हसनअलीख़ां महाराणा की सेना से छीनी हुई चीज़ों को बीस ऊंटों पर लदवाकर बादशाह के पास ले आया और उससे निवेदन किया कि उदयपुर के बड़े मंदिरों के अतिरिक्त आसपास के १७२ मंदिर तोड़ दिये गये। इसपर बादशाह ने प्रसन्न होकर हसनअलीख़ां को "हसनअलीख़ां बहादुर आलमगीर शाही" का ख़िताब दिया।

फिर बादशाह ने ख़ानेजहां बहादुर को मंदसोर की तरफ़ भेजा। वि० सं० १७३६ फाल्गुण सुदि ३ (ई० स० १६८०

1. सरकार; औरंगज़ेब; जि० ३, पृ० ३८२।

ता० २२ फ़रवरी) को उसने स्वयं चित्तोड़ की तरफ़ कूच किया और वहां पहुंचकर ६३ मंदिर तुड़वा डाले। फिर उसने शाहज़ादा मुहम्मद अकबर को बहुतसी सेना देकर चित्तोड़ के क़िले पर रहने का हुक्म दिया[1]। इस तरह जब बादशाह ने देखा कि उदयपुर, चित्तोड़ आदि स्थान ले लिये गये हैं और महाराणा पहाड़ों में भाग गया है तब वह अकबर को चित्तोड़ में रखकर स्वयं वि० सं० १७३६ फाल्गुण सुदि १४ (ई० स० १६८० ता० ४ मार्च) को अजमेर लौट गया।

अर्वली पर्वत के बीच में होने से मेवाड़ और मारवाड़ में रही हुई बादशाह की फ़ौज दो हिस्सों में एक दूसरे से अलग कर दी गई थी। इस पर्वतश्रेणी का उच्चभाग महाराणा के अधिकार में होने से वह चाहे जिधर (पूर्व या पश्चिम) शाही सेना पर आक्रमण कर सकता था, परंतु मुग़लों को यह सुभीता न था। उन्हें बदनोर, ब्यावर और सोजत के लम्बे रास्ते से चित्तोड़ से मारवाड़ को सेना भेजने में बड़ी कठिनाई होती थी। बादशाह महाराणा की सेना के बड़े घेरे को उदयपुर, राजसमुद्र और देसूरी इन तीन भिन्न-भिन्न स्थानों से तोड़ना चाहता था।

शाहज़ादा अकबर बारह हज़ार सेना के साथ अजमेर से दक्षिण और अर्वली से पूर्व में जितनी मुग़ल सेना थी, उस सब

1. वीर-विनोद; भाग २; पृ० ४६७।

का अफ़सर बनाया जाकर चित्तौड़ में रक्खा गया था, परन्तु उसकी सेना इतने बड़े स्थान पर क़ाबू रखने के लिए बहुत कम थी। उसके दो मुख्य सहायक हसनअलीख़ां और तहव्वरखां थे। सब मिलाकर प्रायः बारह हज़ार आदमी थे, परन्तु राठोड़ों की संख्या पचीस हज़ार सवार थी और उदयपुर की फ़ौज भी बारह हज़ार से ऊपर थी। यद्यपि राजपूतों के लिए सुशिक्षित मुग़ल सेना का सामना करना बड़ा कठिन काम था, क्योंकि मुग़ल सेना में तोपख़ाने के अध्यक्ष सब यूरोपियन अफ़सर थे, जिससे खुले मैदान में राजपूत उनसे युद्ध करने में असमर्थ थे, तथापि पहाड़ों में वे मुसलमानों को बुरी तरह से हराते थे। वे अपने देश में ही लड़ते थे और उसके कोने-कोने से अच्छी तरह परिचित थे। मुसलमानों के लिए वह पहाड़ी प्रदेश नया था और उन्हें शत्रुओं के बीच में से होकर गुज़रना पड़ता था। यह अवश्य है कि कुछ राजपूत सरदार बादशाह की तरफ़ से भी लड़ते थे।

बादशाह के अजमेर लौटने पर राजपूतों ने ज़ोर मारा और उन्होंने मुसलमानों पर आक्रमणकर उनको मारना तथा उनका सामान लूटना आरंभ किया। मुग़ल सेना पहाड़ों के भीतर घुसने से डरती थी, क्योंकि मुसलमान जानते थे कि हसनअलीख़ां की फ़ौज की क्या दशा हुई थी। उनको राजपूतों का इतना डर पैदा हो गया था कि वे फ़ौज के अफ़सर बनना भी

नहीं चाहते थे और कई तरह के बहाने बनाकर सेना के साथ आगे बढ़ने से इनकार कर देते थे।

महाराणा ने अपने बड़े कुंवर जयसिंह को बहुतसे सवारों और पैदल सेना के साथ चित्तोड़ की तरफ़ शाहज़ादा अकबर से लड़ने के लिए भेजा था। अंधेरी रात में राजपूत लोग शत्रु पर एक दम टूट पड़े। मुसलमानों के बहुतसे आदमी आपस में ही लड़ मरे। राजपूत खूब दिल खोलकर तलवार, कटार और बरछों से लड़े तथा शाहज़ादे के हाथी, घोड़े, असबाब जो हाथ आये लूटकर सूर्योदय से पहिले कुंवर जयसिंह के पास लौट गये। इसके अतिरिक्त मुग़ल सेना पर और भी विपत्तियां आईं। राजपूतों ने बनजारों के दल को, जो दस हज़ार बैलों पर नाज लादकर मालवे से शाहज़ादा की सेना के लिए ले जाते थे, रास्ते में ही लूट लिया। फलतः शाहज़ादे की सेना भूखों मरने लगी। इन सब घटनाओं से मुग़लों के मन में इतना डर पैदा हो गया कि हसनअलीखांजैसे साहसी अफ़सर ने भी फिर पहाड़ों में जाकर आक्रमण करना स्वीकार न किया। वे अपने डेरों के चारों तरफ़ दीवार बनाने लगे। शाहज़ादे अकबर का कहना था कि उसकी सेना राजपूतों के डर के मारे हिल नहीं सकती थी।

शाहज़ादे अकबर की इस बुरी हालत को देख बादशाह आलमगीर ने क्रुद्ध होकर उसे मेवाड़ से बुलाकर मारवाड़

में भेज दिया और उसकी जगह शाहज़ादा मुहम्मद आज़म को चित्तोड़ भेजा।

ऊपर कहा जा चुका है कि बादशाह औरंगज़ेब का महाराणा के घेरे को तोड़कर मेवाड़ के पहाड़ों में तीन तरफ़ से घुसने का इरादा था। वह चाहता था कि चित्तोड़ की तरफ़ से शाहज़ादा आज़म देवारी का घाटा और उदयपुर होता हुआ आगे बढ़े, उत्तर से शाहज़ादा मुअज़्ज़म राजसमुद्र के रास्तेसे आक्रमण करे और पश्चिम से शाहज़ादा अकबर देसूरी के घाटे में होता हुआ जावे। आज़म और मुअज़्ज़म की तदबीरें चली नहीं, क्योंकि मुग़ल सेना पहाड़ों में घुसना नहीं चाहती थी, तीसरी तदबीर, जो शाहज़ादे अकबर के मारवाड़ में युद्ध करने तथा सफलता पाने के विषय में है, नीचे अनुसार है।

ई० स० १६८० के जून (वि० सं० १७३७ के आषाढ़) मास में शाहज़ादा अकबर अपने सेनापति तहव्वरखां सहित मारवाड़ में गया और उसने सोजत पहुंचकर उसी को अपने ठहरने का मुख्य स्थान बनाया। मारवाड़ में भी शाहज़ादे को मेवाड़ की अपेक्षा अधिक सफलता न मिली। राठोड़ देश में चारों तरफ़ फैल गये थे और मुसलमानों पर अचानक आक्रमण करते थे। वे उनके सामान को लूटते और सर्वदा देश में एक तरह का आतंक फैलाये रखते थे।

वे कोई बड़ी लड़ाई नहीं लड़ते थे, किन्तु अपनी लूटमार से मुग़ल अफ़सरों को सदा भयभीत रखते थे। मारवाड़ के सब प्रान्तों में (दक्षिण में जालोर और सिवाणा, पूर्व में गोड़वाड़, उत्तर में नागोर और उत्तर-पूर्व में डीडवाना, सांभर आदि स्थानों पर) वे मौक़े-मौक़े आक्रमण किया करते थे।

शाहज़ादे अकबर को यह हुक्म था कि मारवाड़ में पहुंच-कर वह सोजत को अपने ठहरने का मुख्य स्थान बना नाडोल (देसूरी ज़िले में) पर अपना अधिकार कर ले। फिर उसे अपना मुख्य स्थान बनाकर तहव्वरख़ां की अध्यक्षता में अपनी फ़ौज को आगे बढ़ाकर नारलाई होता हुआ वह मेवाड़ में प्रवेश करे और देसूरी के घाटे में से होकर कुंभलमेरु की पहाड़ी पर, जहां कि महाराणा और परास्त राठोड़ अपनी रक्षा के लिए रहते थे और जहां से वे शत्रु पर अचानक टूट पड़ते थे, आक्रमण करे। शाहज़ादे को यह सब काम शीघ्र ही करने की आज्ञा दी गई थी, परन्तु इनके करने में उसने कई महीने लगा दिये। मौत से न डरनेवाले राजपूतों ने मुसलमानों के मन में इतना डर पैदा कर दिया था कि तहव्व-रख़ां की फ़ौज नाडोल को जाती हुई रास्ते में खरवा गांव में ही ठहर गई और उसने आगे बढ़ने से इनकार कर दिया। सितम्बर ई० स० १६८० (आश्विन वि० सं० १७३७) के महीने में जब वह सेना नाडोल पहुंची तब मुसलमानों को वही डर फिर पैदा हो

गया। इसलिए सेनापति तहव्वरखां को स्वयं फ़ौज को आगे बढ़ाने के लिए वहां जाना पड़ा।

इधर सब प्रकार बन्दोबस्त कर शाहज़ादा अकबर ई० स० १६८० ता० २१ सितम्बर (वि० सं० १७३७ आश्विन सुदि ८) को सोजत से रवाना होकर उसी महीने के अन्त में नाडोल पहुंचा। तहव्वरखां पहाड़ों के भीतर प्रवेश करने को राज़ी न हुआ, जिससे अकबर को उसके साथ ज़बरदस्ती करनी पड़ी। ता० २७ सितम्बर (आश्विन सुदि १४) को तहव्वरखां ने अपनी फ़ौज को देसूरी के घाटे की तरफ़ बढ़ाया। इधर महाराणा के दूसरे पुत्र भीमसिंह की अध्यक्षता में राजपूत सेना ने पहाड़ों से नीचे उतरकर नारलाई के पास मुसलमानों से बड़ी लड़ाई की, जिसमें दोनों तरफ़ का बहुत नुक़सान हुआ।

वि० सं० १७३७ कार्तिक सुदि १० (ई० स० १६८० ता० २२ अक्टोबर) को महाराणा राजसिंह का स्वर्गवास हुआ, जिससे लड़ाई कुछ दिनों तक बन्द रही। इस प्रकार शाहज़ादा अकबर को नाडोल में और तहव्वरखां को देसूरी के घाटे के पास ठहरे हुए कई महीने बीत गये। इस प्रकार विलम्ब होता देखकर बादशाह औरंगज़ेब बड़ा चिन्तित हुआ। उसने रुहुल्लाखां को फ़ौज और धन देकर अकबर की मदद के लिए भेजा। तब अकबर ई० स० १६८० ता० १६ नवम्बर (वि० सं० १७३७ मार्गशीर्ष

सुदि ८) को नाडोल से देसूरी तक बढ़ा और वहां से उसने तहव्वरखां को २२ नवम्बर (मार्गशीर्ष सुदि ११) को जीलवाड़ा के घाटे पर अधिकार करने के लिए भेजा। तीन हज़ार राजपूत पहाड़ी के दोनों तरफ़ बन्दूकें लेकर खड़े थे। तहव्वरखां अपने छः हज़ार सवारों के साथ उन पहाड़ियों के बीच में घुसा। राजपूतों ने बड़ी बहादुरी से उनको रोका, परन्तु फिर भी मुग़ल सैनिक लड़ते हुए जीलवाड़े तक पहुंच ही गये। पीछे से शाहज़ादा अकबर उनको रसद आदि पहुंचाता रहा। जीलवाड़ा और नाडोल से मुसलमानों ने चारों ओर आक्रमण करना आरंभ किया।

जीलवाड़े में पहुंचने के बाद मुग़लों के लिए केवल यही काम बाक़ी रह गया था कि वे थोड़ी दूर और आगे बढ़कर कुंभलमेरु के पास पहुंच जावें, जहां उदयपुर का महाराणा ठहरा हुआ था, परन्तु आगे के पांच सप्ताहों में तहव्वरखां के कामों में ग़फ़लत मालूम होने लगी।

महाराणा राजसिंह की मृत्यु के कुछ समय पहले अर्थात् ई० स० १६८० के मई (वि० सं० १७३७ के ज्येष्ठ) महीने से ही तहव्वरखां के द्वारा राजपूतों से सुलह की बातचीत शुरू हो गई थी और अगस्त मास से राठोड़ सरदार तहव्वरखां के डेरे में आने-जाने लग गये थे। शाहज़ादा अकबर ने अपने पिता को लिखा कि वह राजपूतों की इन सब सुलह की बातों पर ध्यान न दे,

क्योंकि इन बातचीतों से राजपूतों का अभिप्राय मुग़लों के आक्रमण में केवल विलम्ब कराने का है, परन्तु तहव्वरख़ां को यह आदेश था कि वह राजपूत सरदारों को जितना हो सके अपनी तरफ़ मिला लेवे। इसीलिए उसे राजपूतों से बातचीत करनी पड़ती थी। वास्तव में उन दिनों राजपूतों से केवल सुलह की बातचीत ही नहीं चलती थी, किंतु बादशाह औरंगज़ेब के लिए धोखे का जाल फैलाया जा रहा था, जैसा कि आगे जाकर स्पष्ट हो जायगा। यह ठीक-ठीक कह सकना कठिन है कि किस समय से अकबर ने राजपूतों से मिलकर बादशाह को दग़ा देना चाहा था, परन्तु इतना निश्चित है कि ई० स० १६८० के सितम्बर (वि० सं० १७३७ के आश्विन) महीने से उसके काम में ढील मालूम होने लगी। अब उसका सेनापति तहव्वरख़ां युद्ध में ऐसी बहादुरी और योग्यता नहीं दिखाता था, जैसी पहले-पहल उसने मारवाड़ और मेवाड़ में दिखलाई थी, जिसपर बादशाह ने खुश होकर उसे "बादशाह कुलीख़ां" का ख़िताब दिया था। अब वह सेना लेकर आगे तभी बढ़ता था जब उसे इसके लिए प्रेरित किया जाता था। वह कई प्रकार के बहाने बनाकर समय टालता था। अकबर अपने पिता को यही लिखा करता था कि तहव्वरख़ां के पास यथेष्ट सेना नहीं है। वास्तव में उन दिनों वह (शाहज़ादा) बादशाह के लिए धोखे का फन्दा तैयार कर रहा था।

शाहज़ादे अकबर का विद्रोही होना—

सुलतान मुहम्मद अकबर औरंगज़ेब का चौथा पुत्र था। राजपूतों के साथ की लड़ाई के समय उसकी अवस्था केवल २३ वर्ष की थी। उसके जन्म के एक महीने बाद ही उसकी माता की मृत्यु हो जाने से उसके पिता ने बहुत आदर के साथ उसका लालन-पालन किया था। जब वह बड़ा हुआ, तब उसे दूसरे अफ़सरों के नीचे रखकर शाहज़ादों के अनुकुल कार्यों की शिक्षा दी गई। राजपूतों के साथ युद्ध आरंभ होने पर वह मुग़ल सेना का सेनापति नियुक्त हुआ। प्रारम्भ में मारवाड़ में उसे बड़ी सफलता मिली, क्योंकि उस समय राठोड़ों की सुव्यवस्थित सेना तैयार नहीं हुई थी, परन्तु मेवाड़ में ऐसा न हुआ। महाराणा ने उसकी सेना पर भीषण आक्रमण कर उसे जगह-जगह यहां तक परास्त किया था, कि उसकी सेना में राजपूतों की ओर से बड़ा भय पैदा हो गया था। उसकी इस प्रकार दुर्दशा होती देख बादशाह ने क्रोधित होकर उसे मेवाड़ से बदलकर मारवाड़ में भेज दिया। इसपर शाहज़ादे ने बहुत लज्जित होकर कुछ दिनों तक बादशाह को पत्र लिखना बन्द कर दिया, जिससे बादशाह औरंगज़ेब उसपर और भी नाराज़ हुआ। मारवाड़ में भी वह शाहज़ादा राजपूतों को दबा न सका और न बाद-

शाह की आज्ञानुसार देसूरी के घाटे में होते हुए मेवाड़ में जा सका। वह ई० स० १६८० के जुलाई से दिसम्बर (वि० सं० १७३७ के आषाढ़ से मार्गशीर्ष) तक छः महीने मारवाड़ में पड़ा रहा, जहां उसे जीलवाड़े की विजय के अतिरिक्त और कहीं भी सफलता प्राप्त नहीं हुई।

इधर जब दुर्गादास ने देखा कि बादशाह को केवल बहादुरी से जीतना सहज काम नहीं है, तब उसने भेद-नीति से काम लेने का विचार किया। राठोड़ दुर्गादास, राठोड़ सोनिंग[1], राव केसरीसिंह चौहान, रावत रत्नसिंह चूंडावत आदि राजपूत सरदार शाहज़ादे मुअज़्ज़म से मेल करने की चिन्ता में लगे। उस समय मुअज़्ज़म देवारी के बाहर (मेवाड़ में) उदयसागर की पाल के पास ठहरा हुआ था। राजपूतों के वकीलों के आने-जाने की चर्चा जब अजमेर में पहुंची, तब मुअज़्ज़म की माता नव्वाबबाई ने अपने बेटे को लिखा कि तुम इन चालाक राजपूतों के जाल में कभी न पड़ना, नहीं तो नष्ट हो जाओगे। वह शाहज़ादा असमंजस में पड़ा हुआ था, इतने में अपनी माता के उपदेश से संभल गया और उसने राजपूत वकीलों को अपने पास न आने दिया। दुर्गादास बड़ा चालाक था। वह मुअज़्ज़म से निराश हो मारवाड़ की तरफ़ जाकर उसने शाहज़ादे अकबर को अपनी तरफ़

१. मारवाड़ के राव रणमल्ल के पुत्र चांपा के प्रपौत्र विट्ठलदास के कई पुत्रों में से एक सोनिंग था।

मिलाने का विचार किया। सोजत और जैतारण की तरफ़ जाकर उसने तहव्वरख़ां को, जो शाहज़ादे अकबर का सबसे बड़ा सेनापति था, इस काम के लिए मध्यस्थ बनाया। दुर्गादास तथा महाराणा राजसिंह ने अकबर को जतलाया कि बादशाह औरंगज़ेब की राजपूतों को नष्ट करने की नीति उनका नाश करने के बदले मुग़ल साम्राज्य की स्थिरता को ही मिटा रही है। अतएव उस (अकबर) का फ़र्ज़ है कि वह एक बार इस बात को भलीभांति विचार लेवे और ऐसा न होने पावे इसका प्रयत्न करे। साथ ही उन्होंने यह भी कहलाया कि उसे यही उचित है कि वह अपने पैतृक राज्य को बचाने के लिए स्वयं बादशाह बनने की चेष्टा करे। इस कार्य के लिए उसे (शाहज़ादे को) जितनी भी सहायता की आवश्यकता होगी, राठोड़ और सीसोदिये दोनों मिलकर देंगे[1]।

इन बातों में बहुत समय लग गया। सबसे पहले शाहज़ादे अकबर ने उदयपुर के महाराणा राजसिंह के पास एक गुप्तचर भेजा और फिर महाराणा ने शाहज़ादे के पास। दोनों तरफ़ से बातचीत तय हो जाने पर बादशाह पर चढ़ाई करने की सलाह निश्चित हुई, परन्तु इन्हीं दिनों महाराणा राजसिंह के देहान्त होने से कुछ दिनों के लिए मामला ठंढा पड़ गया। फिर नये महाराणा जयसिंह ने, जिस समय तहव्वरख़ां जीलवाड़े के

१. सरकार; औरंगज़ेब; जि० ३, पृ० ४०४।

घाटे में पहुंचा, उसकी मारफ़त बातचीत शुरू कराई और शाहज़ादे से प्रार्थना की कि वह हिन्दुस्तान की मर्यादा को बचाने के लिए राजपूतों की सहायता करे। महाराणा ने अपने प्रतिनिधि राव केसरीसिंह को शाहज़ादे के पास भेजकर उसे राज़ी कराया। शाहज़ादे ने स्वीकार किया कि वह राजपूतों के साथ वैसा ही बरताव करेगा जैसा कि उसके पूर्वपुरुषों ने अर्थात् पहले के बादशाहों ने किया था। उसने महाराणा को अपने राज्य में कई नये परगने मिला लेने की स्वीकृति भी दे दी। महाराणा भी अपने भाई या बेटे की अध्यक्षता में अपनी आधी फ़ौज शाहज़ादे की तरफ़ से युद्ध में लड़ने के लिए भेजने को राज़ी हो गया।[1]

इस घटना के कुछ समय पहले जब अकबर के वकीलों और राजपूतों का परस्पर आना-जाना आरम्भ हुआ था, तब मुअज्ज़म ने एक चिट्ठी अपने भाई अकबर को लिखी थी कि तुम इन राजपूतों के बहकाने में न आना और इसी अभिप्राय की एक अर्ज़ी उसने बादशाह के पास भी भेजी कि मेरे भाई अकबर को राजपूत लोग बहकाकर अपना सहायक बनाना चाहते हैं। आलमगीर को अकबर पर पूरा विश्वास था और मुअज्ज़म पर कम, क्योंकि जब वह हसनअबदाल (पंजाब) में था, उस समय राजपूतों ने शाहज़ादे मुअज्ज़म को बहकाना चाहा था और

१. सरकार; औरंगज़ेब; जि० ३, पृ० ४०९।

इस बात को बादशाह अच्छी तरह जानता था। इसलिए उस-ने सोचा कि अपने भाई के विषय में मुअज्ज़म की चिट्ठी बिल-कुल झूठी है। बादशाह ने मुअज्ज़म को एक फ़रमान लिख भेजा, जिसमें क़ुरान की एक आयत लिखी हुई थी, जिसका अर्थ यह था कि "यह बड़ा झूठ है" और यह भी लिखा कि खुदा हमेशा उसे (मुअज्ज़म को) सीधे रास्ते पर क़ायम रक्खे और बदख़्वाह लोगों की बातों से बचावे[1]। इस पत्र का मतलब यह था कि अकबर पर वह (मुअज्ज़म) व्यर्थ दोष लगाता है। अस्तु बादशाह पर मुअज्ज़म के लिखने का कुछ भी प्रभाव न पड़ा और अकबर दुर्गादास राठोड़ की चिकनी-चुपड़ी बातों में आ गया। उसने अजमेर में पहुंच कर बादशाह पर आक्रमण करने का निश्चय कर लिया।

अजमेर को रवाना होने के दो दिन पहले शाहज़ादे अकबर ने अपने पिता के मन का संदेह मिटाने के लिए एक पत्र लिखा, जिसका आशय यह था कि नये महाराणा के भाई और पुत्र पहाड़ों से उतरकर तहव्वरख़ां की सलाह से मेरे पास आये हैं। राठोड़ सरदार भी तहव्वरख़ां के कहने से सुलह की बातचीत करने को यहां आये हैं। वे कहते हैं कि जब तक मैं स्वयं उनको आप के पास न ले जाऊं और उनकी तरफ़ से क्षमा न मांग लूं,

1. वीरविनोद; भाग २; पृ० ६४६। इलियट; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० ३०१।

तब तक वे हमारे पक्ष में आने के लिए विचार स्थिर नहीं कर सकते। वे कहते हैं कि पहले भी ऐसा हो चुका है। शाहज़ादा स्वयं महाराणा के लड़के को साथ लेकर बादशाह जहांगीर के सन्मुख (सुलह के लिए) उपस्थित हुआ था। यदि ऐसा न किया जायगा तो वे (राजपूत) आने के लिए तैयार नहीं होंगे, इसलिए मैं उनको साथ लेकर आपके पास हाज़िर होता हूं[1]।

अपने पिता को धोखा देने की इस अंतिम चेष्टा के बाद शाहज़ादे अकबर ने असली बात प्रकट कर दी। क़ाज़ी ख़ूबुल्ला, मुहम्मद आफ़िल, शेख़ तय्यब और अमरोहे के मीर ग़ुलाममुहम्मद, इन चारों मौलवियों ने इस बात को प्रकट कर दिया कि इसलाम के क़ायदे को तोड़ने से आलमगीर के तख़्त का हक़ चला गया, अर्थात् उन्होंने अकबर को तख़्तनशीन होकर अपने नाम का ख़ुतबा और सिक्का जारी करने का मज़हबी फ़तवा दे दिया[2]।

ई० स० १६८१ ता० १ जनवरी (वि० सं० १७३७ माघ वदि ७) को अकबर ने औरंगज़ेब को तख़्त से उतारने और स्वयं बादशाह बन जाने की घोषणाकर अपने नाम का ख़ुतबा और सिक्का जारी कर दिया[3]। ता० २ जनवरी अजमेर में

१. सरकार; औरंगज़ेब; भाग ३, पृ० ४०६।

२. वही; पृ० ४०६। वीरविनोद; भाग २, पृ० ६४७।

३. जोधपुर राज्य की ख्यात (भाग २, पृ० ४२-४३) में लिखा है कि

बादशाह पर आक्रमण करने के लिए रवाना होने का दिन निश्चित हुआ। अकबर ने अपने पक्ष के सरदारों और फ़ौजी अफ़सरों को इनाम-इकराम और ख़िताब देकर खुश किया। तहव्वरख़ां को सात हज़ारी मनसब देकर "अमीर-उल्-उमरा" का ख़िताब दिया गया। जिन लोगों ने उसका विरोध किया वे क़ैद कर दिये गये।

अकबर का बादशाह पर आक्रमण—

ई० स० १६८१ के जनवरी (वि० सं० १७३७ के माघ) मास में बादशाह आलमगीर ने अकबर का सारा हाल सुना। इस अचानक और भयंकर विपत्ति के उठने तथा अपने प्रिय पुत्र के विद्रोही होने से बादशाह के मन में बड़ा दुःख और भय उत्पन्न हुआ, क्योंकि राठोड़, सीसोदिये और शाही सेना मिलाकर शाहज़ादे अकबर के पास प्रायः सत्तर हज़ार फ़ौज हो गई थी।

गांव जीलवाड़े में शाहज़ादे अकबर के ख़िदमतगार ताजमुहम्मद और चौहान भावसिंह ने राठोड़ों के पास जाकर कहा कि राठोड़ शाहज़ादे से मिलकर राजा के बेटे (अजीत) को जोधपुर की गद्दी और शाहज़ादे को दिल्ली के तख़्त पर बैठावें। तहव्वरख़ां शाहज़ादे से देसूरी में मिला और उसका बेटा जाकर राठोड़ों को शाहज़ादे के पास ले गया। वि० सं० १७३७ माघ वदि ६ (ई० स० १६८१ ता० ३ जनवरी) को खोड़ गांव में शाहज़ादा अकबर तख़्त पर बैठा।

इस समय अजमेर में बादशाह की स्थिति बहुत बुरी थी। उसकी विश्वासपात्र सेना के दो बड़े-बड़े हिस्सों में से एक हिस्सा चित्तोड़ के पास और दूसरा राजसमुद्र के पास था; यहां तक कि बादशाह के पास जो शरीर-रक्षक रहते थे, वे भी अनुपस्थित थे। उसके पास बेकार सिपाही, हिंजड़े और नौकर-चाकर आदि मिलाकर दस हज़ार से भी कम आदमी रह गये थे। खाफ़ीखां लिखता है कि उस समय बादशाह के पास ७००-८०० सवारों से अधिक न थे[1]।

बादशाह ने घाटों की रक्षा के लिए आदमी भेजे। महलों के पास की घाटियों पर मोर्चे जमा दिये गये। सूबेदारों के पास फ़रमान भेजे गये कि वे अपने-अपने इलाक़ों का बन्दोबस्त रक्खें। बादशाह ने शिकार के लिए सवारी की और लौटते समय सब मोर्चों को देखा। वज़ीर असदखां को हुक्म दिया गया कि वह सर्वदा मोर्चों की निगरानी रक्खे और तोपखाने के दारोगा को बुलाकर कहा गया कि वह लश्कर के चारों तरफ़ तोपखाने के मोर्चे जमा देवे। शाहज़ादे अकबर के वकील गढ़ बीटली (तारागढ़, अजमेर में) के क़िले में क़ैद कर दिये गये।

उस समय प्रत्येक मनुष्य का यही अनुमान था कि शाहज़ादा अकबर अपनी फ़ौज सहित शीघ्र ही बादशाह के सामने

१. इलियट; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० ३०२।

जा पहुंचेगा। लोगों ने सोचा कि बादशाह औरंगज़ेब अपनी थोड़ीसी फ़ौज के साथ हार जावेगा और फिर नया बादशाह होगा, परन्तु शाहज़ादा अकबर ऐसा नेता न था जो शीघ्रता से ठीक समय पर काम करता। उसने केवल अपने ही प्रयत्न से कभी विजय प्राप्त नहीं की थी। अपनी युवावस्था तथा बादशाह बनने के घमंड में आकर वह अपना समय ऐश-आराम में बिताने लगा। फलतः अजमेर में पहुंचकर युद्ध करने में बहुत विलम्ब हुआ। प्रायः १२० मील आने में उसने १५ दिन लगा दिये। इस अवधि में बादशाह औरंगज़ेब के पास चारों ओर से सेनाएं आ गईं। अकबर की सेना से भी कुछ आदमी बादशाह के पास चले गये। शिहाबुद्दीनखां को बादशाह ने पहले से ही राजपूतों को सज़ा देने के लिए सिरोही की तरफ़ भेज दिया था। अकबर ने उसे अपनी तरफ़ मिलाने के लिए मीरखां को भेजकर बुलवाया, परन्तु वह नहीं आया। उसने सोचा कि शाहज़ादा अकबर आसानी से जीत नहीं सकता, कारण एक तो बादशाह का सामना है और दूसरा पीछे से तीनों शाहज़ादों में लड़ाई का मुक़ाबला। अतः उसने मीरखां को भी समझा-बुझाकर अपने साथ कर लिया और वह दो दिन में १२० मील चलकर अजमेर पहुंच गया। बादशाह ने सब हाल सुनकर उसे खिलअत आदि देकर उसकी इज्ज़त बढ़ाई। उस समय हामिदखां भी बादशाह के पास चला गया। उस विकट समय में बाद-

शाह को एक-एक आदमी फ़रिश्तासा सहायक मालूम होता था। शिहाबुद्दीनखां के आ जाने से बादशाह की सेना बहुत बढ़ गई। फिर खबर आई कि शाहज़ादा मुअज्जम भी फ़ौज सहित आ रहा है। मुअज्जम उदयपुर के पास के उदयसागर तालाब से तीन दिन में ८० कोस चलकर अजमेर पहुंचा। खाफ़ीखां ने लिखा है कि बादशाह औरंगज़ेब को मुअज़्ज़म की तरफ़ से भी संदेह था, इसलिए उसने हुक्म दिया कि तोपखाने का मुंह मुअज्जम के लश्कर की तरफ़ फेर दिया जावे[1] और शाहज़ादे को भी कहला दिया कि यदि वह सच्चे दिल से आया हो तो अपने दोनों बेटों को लेकर अकेला चला आवे। मुअज्जम का मन शुद्ध था, अतः वह अपने बेटे मुईज़ुद्दीन और मुहम्मद अज़ीमुश्शान के हाथों पर रूमाल लपेटकर बाप की सेवा में उपस्थित हो गया। खाफ़ीखां शाहज़ादा मुअज़्ज़म के साथ नौ या दस हज़ार सवार लिखता है और मुस्तइदखां "मुआसिरे आलमगीरी" में केवल एक हज़ार सवार होना बतलाता है, जो ठीक प्रतीत होता है। बादशाह के डेरे में सब लोग घबरा गये थे, परन्तु बादशाह दृढ़चित्त था और हर समय शाहज़ादे अकबर के लिए यही कहता था कि बहादुर ने अच्छा मौक़ा पाया है, अब जल्दी क्यों नहीं आता[2]।

१. एलफ़िन्स्टन; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; पृ० ६२६।

२. वीरविनोद; भाग २, पृ० ६४८।

अकबर के अजमेर आने में प्रत्येक दिन की देरी बादशाह के लिए लाभदायक सिद्ध हो रही थी, क्योंकि अकबर के विजय पाने की आशा कम होती जाती थी। शिहाबुद्दीन ने बादशाह के पास ख़बर भेजी कि अकबर की सेना कुड़की (अजमेर से २४ मील दक्षिण-पश्चिम) में ठहरी हुई है। सुनते ही आलमगीर ने फ़ौज तैयार करने का हुक्म दिया। फिर लोगों ने बादशाह को ख़बर दी कि शाहज़ादा अकबर लड़ाई के लिए आगे बढ़ रहा है, परन्तु उसकी फ़ौज के सरदार भागते जाते हैं। वास्तव में बात भी ठीक थी। अकबर की विलासप्रियता एवं अनावश्यक विलम्ब के कारण मुग़ल अफ़सरों को उसकी विजय की आशा नहीं रही थी और वे पीछे बादशाह के जीतने पर उसका कोपभाजन बनने के बदले उसका प्रीतिपात्र बनना अधिक हितकर समझकर बादशाह से मिलते जाते थे। केवल तीस हज़ार राजपूत और कुछ मुग़ल सेना उस(अकबर)के साथ बनी रही।

बादशाह ने क़िले के भीतर रहकर लड़ाई करने से इनकार किया। ई० स० १६८१ ता० १५ जनवरी (वि० सं० १७३७ माघ सुदि ६) को उसकी सेना आगे बढ़ी और अजमेर से छः मील दक्षिण में देवराई (दोराई) गांव के उस ऐतिहासिक मैदान पर, जहां कि उसने अपने भाई दारा को परास्त किया था, ठहरी। उधर से अकबर की फ़ौज ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती थी, त्यों-त्यों

उसके अफ़सर बादशाही फ़ौज में मिलते जाते थे। अकबर अपने पिता के डेरे से तीन मील की दूरी पर आ ठहरा और रातभर वहीं रहकर सवेरा होते ही उसने युद्ध आरम्भ करने का विचार ठान लिया।

शाहज़ादे अकबर का भागना—

मनुष्य संसार में कार्यों की सिद्धि के लिए बहुत कुछ उद्योग करता है, परन्तु जो होनहार है वही होता है। इसे चाहे विधाता का विधान कहिये, चाहे अपना कर्मफल। शाहज़ादे अकबर की प्रातःकाल होते ही युद्ध आरम्भ करके बादशाह औरंगज़ेब को परास्तकर दिल्ली के तख़्त पर बैठने की इच्छा थी, परन्तु एक ही रात में उसकी यह इच्छा स्वप्न की तरह नष्ट हो गई। बादशाह औरंगज़ेब ने एक ही चाल में उसका सारा मामला बिगाड़ दिया तथा बिना लड़े ही युद्ध जीत लिया।

हम पहले लिख चुके हैं कि शाहज़ादे अकबर की दीर्घ-सूत्रता को देखकर उसके अफ़सरों के मन में घबराहट पैदा हो रही थी। शाहज़ादे की तरफ़ से बादशाह के विरुद्ध लड़ने में वे सर्वदा शङ्कित रहते थे। इसी से अन्त समय में भी बादशाह से जाकर मिलना वे अपने लिए हितकर समझते थे।

शाहज़ादे का सबसे बड़ा फ़ौजी अफ़सर तहव्वरख़ां था,

जो बादशाह के बड़े कर्मचारियों में से इनायतखां का दामाद था। बादशाह ने इनायतखां के हाथ से तहव्वरखां को एक चिट्ठी लिखवाई कि यदि वह (तहव्वरखां) बादशाह के पास चला आवेगा, तो उसका क़सूर माफ़ कर दिया जायगा और यदि न आयेगा तो सबके सामने उसकी औरतों की बेइज़्ज़ती कराई जावेगी और उसके बालबच्चे कुत्तों की क़ीमत पर बेच दिये जावेंगे[1]। इस पत्र के पाते ही तहव्वरखां घबरा गया। उसने देखा कि उसके बालबच्चे शत्रु के हाथ में हैं और अकबर के जीतने की आशा भी बहुत कम है। अतएव तत्काल अपनी पोशाक पहन चुपचाप अकबर के डेरे से निकलकर दुर्गादास या अकबर से पूछे बिना ही वह बादशाह के डेरे में जा पहुंचा। उस समय डेढ़ पहर रात बीत चुकी थी। बादशाह नमाज़ पढ़कर शाहज़ादे मुअज़्ज़म सहित बैठा हुआ था। उस समय अर्ज़ हुई कि शाहज़ादा अकबर की फ़ौज से तहव्वरखां हजूर की ख़िदमत में हाज़िर हुआ है। हुक्म हुआ कि उसे हथियार खोलकर हाज़िर किया जावे। तहव्वरखां ने हथियार खोलने से इनकार किया और कहा कि वह एक बड़ा अफ़सर है, उसे पहिले कभी बादशाह के सामने हथियार खोलकर क़ैदी की तरह जाने का अपमान नहीं सहना पड़ा। शाही आदमी जितना भी उसे हथियार खोलने के लिए कहते

१. सरकार; औरंगज़ेब; जि० ३, पृ० ४१२।

थे, उतना ही उसके मन में उसे धोखा देने का संदेह बढ़ता जाता था। फिर आपस में ज़ोर से झगड़ा होने लगा। सभासदों ने बादशाह को इशारे से कह दिया कि वह अकबर से सलाहकर बादशाह को मारने के लिए आया है। यह सुनते ही आलमगीर ने म्यान से तलवार निकाल ली और गुस्से में आकर कहा कि उस नालायक को हथियार सहित आने दो। शाहज़ादे मुअज़्ज़म ने अर्दली के लोगों को इशारा कर दिया कि वे उसे आते ही मार डालें और ऐसा ही हुआ। उसके प्रवेश करते ही एक सिपाही ने तहव्वरख़ां की छाती पर धक्का दिया, जिसपर उसने उसके गाल पर थप्पड़ मारा और फिर घबराकर पीछा जाने लगा, परन्तु तम्बुओं की रस्सी में पैर उलझ जाने से वह गिर पड़ा। गिरते ही शाही नौकरों ने चारों तरफ़ से उसे घेरकर मारना शुरू किया और एक ने उसका सिर काट डाला[1]।

तहव्वरख़ां का बादशाह के पास आने का क्या अभिप्राय था यह ठीक-ठीक कहना कठिन है; परन्तु संभव है कि वह अच्छे मतलब से ही बादशाह के पास गया था[2]। उसके मन में बादशाह को धोखा देने का विचार नहीं था। अपने श्वसुर का पत्र पाते ही उसने बादशाह के पास जाने का विचार

१. इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० ३०३।

२. टॉड ने (राजस्थान; जि० १, पृ० ४५१) में लिखा है कि उसने बादशाह को मारना चाहा था।

किया, किन्तु हथियार खोलना अपनी इज्ज़त से बाहर समझकर उसने बादशाह की वह आज्ञा न मानी।

यह खबर शाहज़ादे अकबर के लश्कर में पहुंची, जिससे उसकी सेना में खलबली मच गई और सैनिक इधर-उधर भागने लगे।

दूसरी बात, जैसा कि ख़ाफ़ीखां ने मुन्तखबुलुबाब में लिखा है, यह हुई कि बादशाह ने चालाकी से एक जाली फ़रमान शाहज़ादे अकबर के नाम लिख भेजा, जो राजपूतों के हाथ लग गया। उसमें यह लिखा था—"ऐ मेरे प्यारे शाहज़ादे, तू मेरी हिदायत के मुआफ़िक़ इन नालायक़ राजपूतों को धोखा देकर खूब लाया है, लेकिन अब इनको अपनी हरावल में करना चाहिये ताकि दोनों तरफ़ से क़त्ल किये जावें[1]।" इस फ़रमान के देखने से राजपूतों के मन में अकबर पर बड़ा संदेह उत्पन्न हुआ। जब ख़त पहुंचा, तब आधी रात बीत चुकी थी। शाहज़ादा अकबर सो रहा था और उसके पहरेदारों को सख़्त हुक्म था कि सोने के समय उसे न जगावें। दुर्गादास के हाथ में वह फ़रमान तब तक पहुंच गया था। वह शाहज़ादा अकबर के डेरे में गया, परन्तु उसे निद्रित देखकर अपने डेरे में लौट आया और तहव्वरखां को बुला भेजा, परन्तु जब राजपूतों को यह ज्ञात हुआ कि उनके इन

१. इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० ३०४।

सब कार्यों का आधार और अकबर का प्रधान सेनापति कुछ घन्टे पहले बादशाह के डेरे में चला गया है, तब उन्हें निश्चय हो गया कि यह फ़रमान सच्चा है और शाहज़ादा अकबर उन्हें धोखा देने के लिए ही सोने का बहाना कर रहा है। उन्होंने सोचा कि यह उनके लिए एक बड़ी सौभाग्य की बात थी कि उन्हें अकबर की चाल समय रहते मालूम हो गई और अब यदि वे इस धोखे से बचना चाहते हैं तो उनको अपने प्राण बचाने के लिए जितना शीघ्र हो सके वहां से भागना उचित है। सवेरा होने के प्रायः तीन घंटे पहले वे घोड़ों पर सवार होकर शाहज़ादे अकबर का माल असबाब, जो कुछ हाथ लगा, लेकर मारवाड़ की तरफ़ रवाना हो गये। ऐसी परिस्थिति देखकर शाही फ़ौज के कई मनुष्य, जिनको शाहज़ादा अकबर ने अपने पक्ष में लड़ने के लिए बाध्य किया था या लड़ना स्वीकार न करने पर क़ैद किया था, भागकर बादशाह से जा मिले। सच बात तो यह है कि तहव्वरखां के मारे जाने से शाहज़ादे अकबर की शक्ति कम हो गई, क्योंकि केवल उसी के प्रयत्न से राजपूतों का अकबर से मेल हुआ था और वह अकबर का मंत्री तथा प्रधान सेनापति था। उसके चले जाने से अकबर की सब चेष्टाएं व्यर्थ हो गईं।

प्रातःकाल होते ही अकबर ने देखा कि प्रायः उसकी सारी सेना भाग गई है। एक ही रात में उसकी इतनी बड़ी सेना

ऐसे अदृश्य हो गई, मानो किसी ने उसे जादू से उड़ा दिया हो। केवल दुर्गादास, महाराणा के दो तीन विश्वस्त सरदार और प्रायः दो या तीन हज़ार सवार उसके पास रह गये[1]। दिल्ली की गद्दी पर बैठने का स्वप्न एक ही रात में समाप्त हो गया।

अब उसने अपने पिता के क्रोध से बचने के लिए शीघ्र ही वहां से भागना चाहा। अतः अपनी औरतों[2] को (जो उसके साथ थीं) घोड़ों पर सवार करा कर और जो कुछ ख़ज़ाना लिया जा सका उसे ऊँटों पर लदवाकर वह राजपूतों के पीछे-पीछे भागा। रास्ते में मेरों ने उसके गहने आदि कुछ चीज़ें छीन लीं, परन्तु दुर्गादास ने उन चीज़ों को उनसे वापस मंगवा दिया।

जब औरंगज़ेब के पास शाहज़ादे के भागने की ख़बर पहुंची तो शाही डेरे में बहुत खुशी मनाई गई तथा लोगों ने बादशाह की नज़र-निछावर की। फ़र्राशख़ाने के दारोगा मुहम्मअलीख़ां ने उस(अकबर)के सब कारख़ानों और सामान पर अधिकार कर लिया और दरबारख़ां नाज़िर शाहज़ादे अकबर के बेटों नीकोसियर और मुहम्मद असग़र तथा लड़कियों

---

१. इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० ३०४। टॉड ने अकबर के साथ ५०० राजपूत (राजस्थान, जि० १, पृ० ४५१) और सरकार ने ३५० सवार (औरंगज़ेब; जि० ३, पृ० ४१५) होना लिखा है।

२. जोधपुर राज्य की ख्यात (जि० २, पृ० ४३) में एक बेग़म और २५ ख़वासों का होना लिखा है।

ज़कियतुन्निसा, नज़ीबतुन्निसा एवं बेगम सलीमहबानू को बादशाह के पास ले आया। शिहाबुद्दीनखां, जो शाहज़ादे का पीछा करने को गया था, उसके सलाह देनेवालों को मारकर लौट आया। बहुतसे लोग क़ैद हुए तथा बहुतसे पीटे गये और जेलखाने में डाल दिये गये। क़ाज़ी खूबुल्ला, मुहम्मद आक़िल, शेख़ तय्यब और मीर ग़ुलाममुहम्मद, जिन्होंने अकबर को बादशाह बनने का मज़हबी हुक्म दिया था, लकड़ी के तख़्तों पर लिटाकर चाबुक से पीटे गये और फिर बीटलीगढ़ के क़िले में भेज दिये गये। अकबर के दूसरे साथियों को भी क़ैद की सज़ा दी गई। आलमगीर की बड़ी शाहज़ादी ज़ेबुन्निसा बेगम के मुहम्मद अकबर के नाम लिखे हुए पत्रों के प्रगट होने पर बादशाह ने उसका सारा माल असबाब तथा चार लाख रुपये वार्षिक वृत्ति (जो उसे मिलती थी) ज़ब्त करके उसे सलीमगढ़ में भेज दिया[1]।

विद्रोही अकबर को पकड़ने के लिए एक अच्छी फ़ौज शाहज़ादे मुअज़्ज़म की अध्यक्षता में मारवाड़ में भेजी गई। सब प्रदेशों के हाकिमों तथा ज़मींदारों को यह हुक्म भेजा गया कि वे रास्तों पर निगाह रक्खें और अकबर को राजपूताने से बाहर न निकलने दें।

अकबर छत्तीस घंटे तक किसी सुरक्षित स्थान की खोज

१. वीरविनोद; भाग २; पृ० ६४६-५०।

में भागता फिरा। उधर जब राजपूतों को विदित हुआ कि बादशाह ने उनको धोखा दिया था, शाहज़ादा अकबर ने नहीं, तब उन्होंने वापस लौटकर उसको अपनी शरण में ले लिया, क्योंकि राजपूतों का यह एक धर्म है कि वे शरणागत की रक्षा जान तक देकर करते हैं। अकबर अपने राजपूत रक्षकों के साथ-साथ मारवाड़ में भटकता रहा और इस भय से कि कोई उसे पकड़ न ले, किसी भी जगह पर चौबीस घंटे से अधिक नहीं ठहरता था। इसपर मुअज्ज़म ने अकबर को पकड़ने के लिए एक नई तरक़ीब निकाली। उसने अपनी फ़ौज को कई हिस्सों में विभाजितकर अकबर को रोकने के लिए मारवाड़ के भिन्न-भिन्न स्थानों पर रख दिया। एक सप्ताह के भीतर ही अकबर सांचोर पहुंचा, जो जालोर से ७० मील दक्षिण-पश्चिम में है और उसके शत्रु उसका पीछा करते हुए जालोर तक जा पहुंचे। शाहज़ादे मुअज्ज़म ने अकबर को गुजरात का सूबा जागीर में दिलाने की शर्त पर उसे अपने पास बुलाया और राठोड़ों को भी इस काम के लिए ४००० मोहरें देने का वायदा किया, परंतु यह बात दुर्गादास को पसन्द नहीं आई और उसने अकबर को मुअज्ज़म के पास नहीं भेजा[1]। तब अकबर मारवाड़ से मेवाड़ में गया। शाहज़ादे

१. जोधपुर राज्य की ख्यात; भाग २, पृ० ४३-४४। टॉड; राजस्थान; जि० १, पृ० ४५१, टिप्पण १।

आज़म ने महाराणा जयसिंह के पास एक फ़रमान इस मतलब से लिख भेजा कि अकबर गुजरात से पहाड़ों में होकर देसूरी के घाटे की तरफ़ जाता है, उसे पकड़ लेना और मौक़ा मिले तो मार भी डालना, परन्तु अकबर के साथ महाराणा का सरदार रावत रत्नसिंह चूंडावत, राठोड़ दुर्गादास और राठोड़ सोनिंग आदि रक्षक थे, जिससे ऐसा न हो सका। अकबर की इच्छा महाराणा से मिलने की थी, परन्तु उस समय बादशाह से सुलह की बातचीत हो रही थी, इसलिए महाराणा ने शाहज़ादे को सावधानी से दक्षिण की तरफ़ पहुंचाने की आज्ञा दी और १५०० रुपये और ८० घोड़े शाहज़ादे को देकर विदा किया। पांच सौ राठोड़ सवारों के साथ अकबर मेवाड़ से निकलकर डूंगरपुर की पहाड़ियों को पारकर दक्षिण की ओर चला। डूंगरपुर के रावल जसवंतसिंह ने बड़े शिष्टाचार से स्वागत करके राजपीपला के रास्ते से उसे आगे बढ़ाया। प्रत्येक घाटी और नदी के किनारे पर बादशाही पहरेदार थे, परन्तु चतुर दुर्गादास हर स्थान से शाहज़ादे को उनसे बचाकर ले जाता था। ई० स० १६८१ ता० १ मई (वि० सं० १७३८ ज्येष्ठ वदि ८) को वे नर्मदा नदी पर पहुंचे, वहां से ता० १५ मई को ताप्ती (तापी) नदी पर आये। वहां का रास्ता शाही अफ़सरों से घिरा हुआ था, इसलिए वे खानदेश और बगलाना होते हुए दक्षिण में छत्रपति शिवाजी के पुत्र शंभाजी के

दरबार में (रायगढ़) पहुंचे। इतना लम्बा सफ़र करता हुआ भी अकबर पकड़ा नहीं जा सका. जिसका संभवतः यह कारण हो कि खानेजहां बहादुर, जो दक्षिण में हाकिम था, उसकी गिरफ़्तारी को दिल से टालता था। शंभाजी ने बड़े आदर के साथ शाहज़ादे अकबर का स्वागतकर उसे अपने यहां ठहराया[1] और मोती की माला, हीरे का पदक तथा क़ीमती कपड़े भेंट किये। हिन्दुस्तान में उस समय केवल यही एक ऐसा मरहटा राजा था, जो बादशाह औरंगज़ेब से युद्ध कर सकता था।

अकबर दीवाने-आम आदि दरबार कर बादशाह की तरह रहने लगा और अपनी गद्दीनशीनी की तारीख़ से पत्रादि लिखने लगा। ई० स० १६८१ के अगस्त (वि० सं० १७३८ भाद्रपद) मास तक उसकी सवार सेना पांच हज़ार हो गई, परंतु बादशाह को हराने की उसकी आशा कम हो गई थी, जिसका कारण यह था कि उस समय तक बादशाह की मेवाड़ के महाराणा के साथ संधि हो चुकी थी। अपने बेटे आज़म को सेना सहित दक्षिण में भेजने के अनंतर बादशाह स्वयं एक बड़ी फ़ौज लेकर नवम्बर (मार्गशीर्ष) के महीने में वहां पहुंच गया था। कुछ दिन तक उसने अकबर से सुलह की बातचीत की, पर उससे कुछ

१. सरकार; औरंगज़ेब; जि० ३, पृ० ४१२-१८। वीर-विनोद; भाग २, पृ० ६९३।

लाभ न हुआ।

अकबर को आशा थी कि शंभाजी उत्तरी भारत के राजपूतों से मिलकर बादशाह को परास्त करने तथा उसे दिल्ली के तख़्त पर बिठाने में उसकी सहायता करेगा, परन्तु शंभाजी को अपने देश में ही बहुतसा काम करने को था; साथ ही उत्तर में जाकर अपने देश को मुसलमानों के आक्रमण के लिए ख़ाली छोड़ना भी उसे पसंद न था। अकबर प्रायः दो साल तक इसी आशा में रहा, किन्तु जब उसने देखा कि उसकी यह आशा फलवती नहीं हो सकती, तब ई० स० १६८३ के नवम्बर (वि० सं० १७४० मार्गशीर्ष) में उसने फ़ारस जाने का इरादा किया। उसके जहाज़ पर बैठ जाने पर दुर्गादास और शंभाजी के मंत्री कविकुलेश उसे राजा की ओर से सहायता दिलाने की शर्त पर पीछा ले आये[1]। ई० स० १६८४ (वि० सं० १७४१) में उसने १५००० सवारों सहित सूरत पर आक्रमण करना चाहा और फिर ई० स० १६८५ के अक्टोबर (वि० सं० १७४२ कार्तिक) में वह भड़ोच में, जहां शाही हुकूमत का विरोध हो रहा था, ३०००० सेना सहित गया, परन्तु उसे कहीं भी सफलता न मिली[2]। ई० स० १६८६ के जून (वि० सं० १७४३ आषाढ़) मास में उसने शाही इलाक़े अहमदनगर पर आक्रमण कर

१. सरकार; औरंगज़ेब; जि० ४, पृ० २८५।
२. वही; पृ० ३६३।

अंतिम प्रयत्न किया, परन्तु वहां के हाकिम मुरहमतखां के साथ की बड़ी लड़ाई में वह हार गया। इन सब असफलताओं के कारण वह बिलकुल निराश होकर ई० स० १६८६ के अक्टोबर (वि० सं० १७४३ कार्तिक) के अन्त में बेन्डल नामक अंग्रेज़ के जहाज़ पर बैठकर ईरान को रवाना हो गया[1], जहां पर वह ई० स० १७०६ (वि० सं० १७६३) तक जीवित रहा[2]।

महाराणा के साथ बादशाह की संधि—

अब हमें यह देखना है कि शाहज़ादे अकबर के बाग़ी होने का प्रभाव मेवाड़ पर क्या पड़ा। अकबर के विद्रोही होने से दिल्ली की बादशाहत नहीं बदली, परन्तु मेवाड़ को बड़ा लाभ हुआ। जिस समय मेवाड़ में लड़ाई अधिक ज़ोर से होनेवाली थी और बादशाह की सेना मेवाड़ को चारों तरफ़ से घेर चुकी थी, उसी समय बादशाह को वहां से फ़ौज अपने पास बुलाकर अकबर से लड़ने तथा उसे पकड़ने के लिए चारों ओर मारवाड़ में भेजनी पड़ी, इसलिए मेवाड़ पर दबाव अपने आप कम हो गया, जिससे मेवाड़ में राजपूतों ने मुग़लों से

१. सरकार; औरंगज़ेब; जि० ४, पृ० ३६६।
२. एलफ़िन्स्टन; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; पृ० ६३६। किनकेड एण्ड पारसनिज़; हिस्ट्री ऑव् दि मरहटा पिप्ल्; जि० २, पृ० ३३।

बदला लेना आरम्भ किया। कुंवर भीमसिंह के सैनिक पहाड़ों से उतरकर गुजरात में फैल गये और बड़नगर, वीसलनगर आदि स्थानों को लूटने लगे। यह सुअवसर देखकर ईडर के राव ने भी राजपूतों की सहायता से अपनी राजधानी को मुसलमानों के हाथ से छुड़ा लिया। महाराणा राजसिंह के मंत्री दयालदास ने पहाड़ से उतरकर मालवे में धार आदि शहरों को लूटा और शाहज़ादे आज़म की सेना पर आक्रमण कर हाथी, घोड़े, ऊंट इत्यादि छीन लिये। फिर वह अपनी स्त्री को मारकर, ताकि वह मुसलमानों के हाथ में न पड़े, लौट गया।

इन छोटी-मोटी लड़ाइयों से महाराणा को कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। उसे केवल पहाड़ों में ही स्वतंत्रता थी। नीचे के मैदानों पर मुग़लों का अधिकार हो गया था। उसके शत्रु खेती-वारी का नाश करते थे, जिससे लोगों को भूखों मरना पड़ता था। इस प्रकार के बहुतसे कष्ट महाराणा के आदमियों को सहने पड़ते थे।

उधर शाहज़ादे अकबर के शंभाजी के साथ मिल जाने से बादशाह औरंगज़ेब को बड़ी चिन्ता हुई। उसने स्वयं फ़ौज लेकर दक्षिण जाना चाहा। इसलिए महाराणा और बादशाह दोनों को सुलह करने की आवश्यकता जान पड़ी। उदयपुर के महाराणा कर्णसिंह के दूसरे पुत्र गरीबदास का बेटा श्यामसिंह, जो शाही सेना में दिलेरख़ां के पास था, महाराणा

(जयसिंह) से आ मिला और उससे निवेदन किया कि यदि दिलेरखां की मारफ़त संधि का प्रस्ताव किया जावे तो सम्भव है कि बादशाह से सुलह हो जाय, क्योंकि शाहज़ादे अकबर के बखेड़े और वर्षा ऋतु के आ जाने से इस समय बादशाह भी लाचार है। महाराणा के मन में श्यामसिंह की बात जंच गई और वह स्वयं ई० स० १६८१ ता० २६ जून (वि० सं० १७३८ श्रावण वदि ३) को शाहज़ादे आज़म से मिला और उसकी तथा दिलेरखां की सलाह से उसने अपने आदमियों को अजमेर में बादशाह के पास भेजा। उन्होंने वहां पहुंचकर सुलह के विषय में बातचीत की। बादशाह औरंगज़ेब भी यही चाहता था। शंभाजी और अकबर के एक हो जाने से उसे बड़ा डर था। इसलिए उसने शीघ्र ही संधि कर ली, जिसकी निम्नलिखित शर्तें थीं—

(१) महाराणा जयसिंह ने बादशाह को जज़िये के बदले में पुर, मांडल और बदनोर के परगने दिये।

(२) मेवाड़ से मुसलमानों का दख़ल उठ गया और वहां पर महाराणा का अधिकार फिर हो गया।

(३) बादशाह ने उसे 'राणा' का ख़िताब देकर पांच हज़ार का मनसब दिया[1]।

---

1. सरकार; औरंगज़ेब; भाग ३, पृ० ४२१-२२। टॉड; राजस्थान; जि० १, पृ० ४६२।

(४) महाराणा राठोड़ों को सहायता न दे[1] ।

(५) जब अजीतसिंह बड़ा हो जावेगा, तब उसका राज्य उसे लौटा दिया जावेगा[2] ।

इस सन्धि से मेवाड़ में तो शान्ति स्थापित हो गई, परन्तु मारवाड़ की दशा पहिले जैसी ही बनी रही । वहां पर लगातार लड़ाइयां होती रहीं । लड़ाई के साथ-साथ बीमारी भी फैली, जिससे धरती उजाड़ होने लगी। यदि बादशाह कुछ समय तक मारवाड़ में और भी फ़ौज भेज सकता, तो राठोड़ों की शक्ति बिलकुल क्षीण हो जाती, परन्तु अकबर के दक्षिण में जाने से बादशाह को अपनी सेना लेकर उसके पीछे जाना पड़ा । इसलिए मारवाड़ में बादशाह की शक्ति कम हो गई, जो राठोड़ों के लिए बहुत अच्छा हुआ । जब किसी विपत्ति के कारण मुग़ल सेना दक्षिण को बुला ली जाती थी, तब राठोड़ पहाड़ों तथा जंगलों से निकलकर मुग़लों पर आक्रमण करते थे और जब

---

१. गौ० ही० ओझा; राजपूताने का इतिहास; जि० २, पृ० ८९८ । संधि के समय अजीतसिंह मेवाड़ में था (टॉड राजस्थान; जि० १, पृ० ४५३, टिप्पण १) ।

२. एलफ़िन्स्टन; हिस्ट्री ऑव् इंडिया, पृ० ६२७ । टॉड; राजस्थान; जि० १, पृ० ४५२, टिप्पण २, नं० ४ । सरकार-कृत औरंगज़ेब (जि० ५, पृ० २६६) में अजीतसिंह के बड़े हो जाने पर उसका बादशाह के अधीन राजा तथा पूर्वजोंजैसा शाही मनसबदार माने जाने का उल्लेख है ।

दक्षिण में लड़ाई कम होती थी, तब मुग़ल सेना फिर मारवाड़ में आकर छीनी हुई जगह राठोड़ों से वापस ले लेती थी। एक ऐसा भी समय आया, जब बादशाह के लिए एक भी आदमी मारवाड़ में भेजकर वहां की सेना की सहायता करना कठिन हो गया। फिर राठोड़ दुर्गादास की सलाह से राजपूत मारवाड़ में इस तरह लड़ने लगे कि मुग़ल अफ़सर तंग आकर रास्ते पर चलनेवाले व्यापारियों को न लूटने की शर्त पर उन्हें चुंगी का चौथा हिस्सा देने को तैयार हो गये। इस प्रकार प्रायः तीस साल तक मारवाड़ में लड़ाई होती रही, जिसका हाल आगे लिखा जायगा।

राजपूतों के साथ की लड़ाइयों में बादशाह की केवल सेना तथा धन का ही नाश नहीं हुआ, किन्तु उसे और भी कई तरह की हानि पहुंची। अपने राज्य की सारी शक्ति दोनों रियासतों (मारवाड़ और मेवाड़) के विरुद्ध लगाने पर भी उसे विशेष सफलता न मिली, जिससे उसकी मर्यादा बहुत घट गई। उसने विशेष आवश्यकता के बिना ही राजपूताने में लड़ाई छेड़ दी, जब कि उसके राज्य के उत्तरी प्रान्त के प्रदेशों में अफ़ग़ान लोग पूरी तरह से दबाये भी नहीं गये थे। फिर राठोड़ों और सीसोदियों के शत्रु हो जाने से उसकी फ़ौज में भर्ती होने को वीर एवं राजभक्त राजपूतों का मिलना कठिन हो गया। केवल मारवाड़ में ही नहीं, परन्तु मुग़ल-साम्राज्य के अन्यान्य स्थानों

में भी बखेड़े खड़े हो गये। मालवा तथा मालवे में होकर दक्षिण को जाने के शाही रास्ते पर भी उपद्रव होने लगा। बात तो यह है कि बादशाह के दूसरे धर्म के माननेवालों को सताने तथा दूसरी जातियों को नष्ट करने के उद्योग का यह परिणाम अवश्यंभावी था।

मारवाड़ में लड़ाई— Durga Das diplomacy

हम पहले लिख चुके हैं कि राठोड़ दुर्गादास ने किस तरह दिल्ली में महाराजा अजीतसिंह को औरंगजेब के पंजे से बचाकर उसे एक गुप्त स्थान में भिजवा दिया था और फिर राजपूतों से मिलकर मारवाड़ में प्रायः दो साल तक वह किस तरह शाही अधिकार हटाने के लिए मुसलमानों से लड़ता रहा। राठोड़ों को अकेले बादशाह से लड़ने में असमर्थ जानकर उसने उदयपुर के महाराणा को राठोड़ों के पक्ष में कर लिया। जब उस(दुर्गादास)ने देखा कि उदयपुर के नये महाराणा जयसिंह से राठोड़ों को मदद मिलना कम हो गया, तब उसने ई० स० १६८० के दिसम्बर (वि० सं० १७३७ पौष) के महीने में शाहज़ादे अकबर को लालच दिखाकर दिल्ली की गद्दी छीनने के लिए तैयार किया, परन्तु जब उसकी यह चेष्टा ई० स० १६८१ के जनवरी (वि० सं० १७३७ माघ) में असफल हो गई,

तब उसने अकबर को अपने साथ लेकर उसे शंभाजी के पास ई० स० १६८१ ता० १ जून (वि० सं० १७३८ आषाढ़ वदि १०) को पहुंचाया, क्योंकि उस समय भारत में केवल शंभाजी ही ऐसा था, जो औरंगज़ेब के शत्रु को अपने यहां शरण दे सकता था। कुछ दिनों तक दुर्गादास अकबर के पास रहकर उसे अपनी सलाह देता रहा, परन्तु थोड़े समय बाद उसको मारवाड़ की रक्षा के लिए दक्षिण से लौटना पड़ा।

महाराणा के साथ बादशाह की जो संधि हुई थी, उस संधि में एक शर्त यह भी थी कि जब महाराजा अजीतसिंह बड़ा हो जायगा, तो वह बादशाह के अधीन राजा माना जावेगा और उसे उसका राज्य लौटा दिया जावेगा तथा उसे उसके पूर्वजों की तरह मनसब भी दिया जावेगा, परंतु अजीतसिंह उस समय बच्चा था और बादशाह भी मारवाड़ पर अपना अधिकार कर चुका था तथा मुग़ल अफ़सरों-द्वारा शासन करता था। इसलिए मारवाड़ में शान्ति हो नहीं सकती थी। वहां राजपूतों ने अपना घर छोड़कर पहाड़ तथा जंगल में रहना और समय-समय पर नीचे उतरकर शाही आदमियों को मारना, सौदागरों और शहरों को लूटना तथा खेती-बारी को बिगाड़ना आरंभ किया। इस प्रकार प्रायः ३० साल वि० सं० १७३६ से १७६५ (ई० स० १६७६–१७०८) तक मारवाड़ में लड़ाई-दंगे होते रहे। वि० सं० १७३६ से १७४३ (ई० स० १६७६ से १६८६) तक की लड़ाई राजपूत

जनता की लड़ाई कही जा सकती है, क्योंकि महाराजा अजीत-सिंह उस समय बच्चा था और छिपकर रहता था तथा राठोड़ों का प्रधान नेता दुर्गादास दक्षिण में गया हुआ था। भिन्न-भिन्न राठोड़ों के दल भिन्न-भिन्न नेताओं की अध्यक्षता में विना किसी व्यवस्था के लड़ाई करते थे और जब कभी उनको मौक़ा मिलता तब ही वे मुसलमानों पर आक्रमण कर देते थे। यद्यपि ऐसी लड़ाइयों में भी राठोड़ों की वीरता और देशभक्ति का यथेष्ट परिचय मिलता था, परंतु मुग़लों की फ़ौज पर इसका कुछ अधिक प्रभाव नहीं पड़ता था, सिवा इसके कि वे सर्वदा राठोड़ों के हमलों से भयभीत रहते थे। इस भय को मिटाने के लिए मुग़ल अफ़सर अपनी फ़ौज को सर्वदा तैयार रखते थे। यदि राठोड़ मुग़लों से कोई जगह छीन लेते, तो उसके थोड़े ही समय बाद शाही फ़ौज आकर उनसे वह जगह वापस ले लेती थी और उन राठोड़ों को पहाड़ों में भगा देती थी, जहां कि उन्हें अपनी स्त्री और बच्चों सहित अनेक कष्ट उठाने पड़ते थे। कोई भी रास्ता निरापद नहीं था और सूर्यास्त होने से पहिले ही शहरों के दरवाज़े बन्द कर दिये जाते थे।

ये सब बातें होते हुए भी राठोड़ों के लिए एक अच्छी बात यह थी कि वे वैसी दशा में किसी मुख्य नायक की अध्यक्षता में रहकर डेरा डालकर खुले मैदान में शत्रु से नहीं लड़ते थे। सुशिक्षित शाही सेना से सम्मुख-समर में इनके जैसे थोड़ी

संख्यावाले सैनिकों की पराजय निश्चित ही थी, जैसा कि वि० सं० १७३६ (ई० स० १६७६) में पुष्कर में तहव्वरख़ां की फ़ौज के साथ की लड़ाई में हुआ था। इसका परिणाम यह होता कि वर्षों तक राठोड़ अपना सिर फिर उठा नहीं सकते थे। इसलिए मौक़े-मौक़े पर लड़ाई करना ही राठोड़ों के लिए सब प्रकार से श्रेयस्कर था।

अब हम उन दिनों की लड़ाइयों का संक्षिप्त वृत्तान्त लिखते हैं[1]:—

वि० सं० १७३६ (ई० स० १६७६) के श्रावण में दिल्ली की लड़ाई की खबर जोधपुर पहुंची। उस समय बादशाह के आदमी जोधपुर में थे। फ़ौजदार ताहिरबेग, क़ायमख़ां, दीनदारख़ां आदि की अध्यक्षता में दो हज़ार सवार थे। दीनदारख़ां पहली रात को यह खबर सुनते ही भागकर नागोर चला गया और फ़ौजदार ताहिरबेग (ताहिरख़ां) को राठोड़ों ने घेर लिया। उसने कहा कि हमारे पास जो माल-असबाब है, वह लेलो और मुझे जीवित जाने दो। सोनिंग (विट्ठलदासोत) आदि राठोड़ों ने उससे माल-असबाब लेकर सूरजमल ऊदावत को उसके साथ भेजकर उसे अजमेर पहुंचाया। वहां से राठोड़ मेड़ते गये और वहां भी उन्होंने लूटमार की।

---

१. इन लड़ाइयों का हाल अधिकतर टॉड राजस्थान तथा जोधपुर राज्य की ख्यात से लिया गया है।

सिवाने में ताहिरखां का दामाद शासक था; सुजानसिंह आदि राठोड़ों ने उसको मारकर सिवाने का गढ़ ले लिया। इस प्रकार राठोड़ों ने मेड़ते और सिवाने पर अधिकार कर बादशाही आदमियों को निकाल दिया[1]। इसके बाद वि० सं० १७३६ भाद्रपद वदि ११ (ई० स० १६७६ ता० २१ अगस्त) को पुष्कर में तहव्वरखां की फ़ौज पर ऊदावत नरसिंहदास, मेड़तिया राजसिंह आदि राठोड़ों ने हमला किया, जिसमें दोनों तरफ़ के बहुतसे मनुष्य मय राजसिंह के मारे गये, जिसके बाद मेड़ता फिर बादशाही खालसे में हो गया। बादशाह ने जब[2] इन्द्रसिंह को जोधपुर भेजा था, उस समय जोधपुर में दो हज़ार राठोड़ सवार गढ़ की रक्षा कर रहे थे। उन्होंने इन्द्रसिंह के जोधपुर में आने के बाद लूटमार शुरू की और कई हज़ार रुपये जनता से छीन लिये।

राठोड़ दुर्गादास दिल्ली की लड़ाई से घायल होकर आने के बाद सालवा गांव में बादशाह के विरुद्ध विद्रोह की तैयारी करने लगा। राव इन्द्रसिंह ने दुर्गादास को बुलाया, परन्तु वह नहीं गया। वि० सं० १७३६ के आश्विन में दुर्गादास, सोनिंग आदि

१. जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० २, पृ० ३७-३८।

२. जोधपुर राज्य की ख्यात (पृ० ३८, ४४) में इन्द्रसिंह का वि० सं० १७३६ भाद्रपद सुदि ७ को जोधपुर आना और वि० सं० १७३८ वैशाख सुदि १० को जोधपुर से नागोर चले जाना लिखा है।

राठोड़ों ने उदयपुर के महाराणा राजसिंह से सहायता चाही, जिसपर महाराणा ने उनके पास सेना भेजी। तब दुर्गादास, सोनिंग आदि राठोड़ सीसोदियों से मिलकर वि० सं० १७३६ के मार्गशीर्ष में जालोर में विहारी फ़तहखां पर आक्रमण करने को चले। इसकी सूचना पाकर बादशाह ने मुकर्रबखां को भेजा। मुकर्रबखां ने राठोड़ों को समझाया और दस हज़ार रुपये पेशकसी देकर उनको विदा किया। फिर राठोड़ों ने सोजत और जैतारण की तरफ़ धावा किया और वहां से भी पेशकसी ली[1]। वि० सं० १७३७[2] ज्येष्ठ वदि १० (ई० स० १६८० ता० १३ मई) को राठोड़ दुर्गादास और सोनिंग ने बिलाड़ा को घेरा तथा वहां पर उन्होंने ऊंट, घोड़े आदि जो हाथ लगे छीन लिये। बिलाड़ा में बादशाह की तरफ़ का आदमी पंवार गोयनदास था। उसने इन्द्रसिंह को यह खबर भेजी, जिसपर इन्द्रसिंह ने दुर्गादास और सोनिंग का पीछा किया। गांव खेतासर के पास ओसियां गांव में ज्येष्ठ सुदि १४ (१ जून) को खूब लड़ाई हुई, जिसमें दुर्गादास और सोनिंग की विजय हुई[3]।

वि० सं० १७३७ आश्विन सुदि १४ (ई० स० १६८०

---

१. जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० २, पृ० ४० ।

२. जोधपुर राज्य की ख्यात में यह संवत् १७३६ दिया है जो श्रावणादि है।

३. वही; पृ० ४० ।

ता० २७ सितंबर) को शाहज़ादा अकबर और तहव्वरखां की सेना से नारलाई गांव में दुर्गादास, सोनिंग तथा महाराणा राजसिंह के पुत्र भीमसिंह की अध्यक्षता में राजपूतों से बड़ा युद्ध हुआ, जिसमें इन्द्रभाण मुकुन्ददासोत आदि मारे गये; परन्तु दुर्गादास की विजय हुई और तहव्वरखां को पीछे हटना पड़ा। यह खबर सुनकर बादशाह ने उसे कहला भेजा कि या तो हाथों में चूड़ियां पहन लो, या घाटे पर चढ़ाई करो[1]।

राठोड़ों के आक्रमण से तहव्वरखां घबरा गया। इसी समय से दुर्गादास ने अकबर को लालच देना चाहा। इन्द्रसिंह से मारवाड़ का शासन न होने पर बादशाह ने दस हज़ार आदमियों के साथ इनायतखां को जोधपुर में शासन करने के लिए रक्खा। राठोड़ सोनिंग, ऊदावत राजसिंह बलरामोत, भाटी रामसिंह, किशोरदास आदि ने खां को घेर लिया, परन्तु बीस हज़ार मुग़ल सेना उसकी सहायतार्थ आ गई। वि० सं० १७३८ आषाढ़ सुदि ६ (ई० स० १६८१ ता० १४ जून) को जोधपुर में बड़ी लड़ाई हुई, जिसमें किशोरदास, राजसिंह सबलसिंहोत आदि बहुतसे सरदार और कई सौ मुसलमान मारे गये[2]। फिर दुर्गादास और

---

१. जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० २, पृ० ४२। टॉड; राजस्थान; (जि० २, पृ० ६६७) में गांव नाडोल दिया है।

२. टॉड; राजस्थान; जि० २, पृ० १००२। जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० २, पृ० ४५।

सोनिंग मेड़ता गये और उन्होंने रास्ते में पड़नेवाले व्यापारियों के सामान और रुपये छीन लिये। इसके बाद डीडवाना से कई हज़ार रुपये लिये। यह सुनकर बादशाह ने अजमेर से फ़ौज भेजी। नागोर के पास लड़ाई होने के बादशाही फ़ौज लौट गई।

चांपावत कान्हसिंह और हरनाथसिंह आदि ने सोजत जाकर वहां के हाकिम सरदारखां को मार भगाया, परंतु वे मारे गये। फिर राठोड़ों ने बगड़ी को लूटा। इन्हीं दिनों राठोड़ सोनिंग ने बादशाह औरंगज़ेब की सेना को बहुत तंग किया। टॉड लिखता है कि वह बादशाह के लिए ऐसा हो गया था, जैसा कि सांप के लिए छछून्दर का निगलना। शाही लोग उससे बहुत डरने लगे। बादशाह राठोड़ों से सुलह करने के लिए तैयार हुआ और उसने महाराजा अजीतसिंह को सात हज़ारी मनसब देना तथा सोनिंग को अजमेर का हाकिम बनाना चाहा[1]। दीवान असदखां के द्वारा राठोड़ों से बातचीत शुरू हुई। असदखां वज़ीर ने कुंवर भीमसिंह (राजसिंहोत) की मारफ़त राठोड़ों से सुलह की बातचीत की, परंतु इसी समय वि० सं० १७३८ आश्विन सुदि ६ (ई० स० १६८१ ता० ८ सितम्बर) को पूजलोता (पुनलोता, पूनला) गांव में सोनिंग की अचानक

1. टॉड; राजस्थान; जि० २, पृ० १००३। टॉड का यह कथन अति-शयोक्ति पूर्ण ही है।

मृत्यु हो जाने से संधि स्थगित हो गई[1]। सोनिंग की मृत्यु की खबर सुनते ही उसका भाई अजबसिंह उठ खड़ा हुआ और मुकुन्दसिंह मेड़तिया अपना शाही मनसब छोड़कर राठोड़ों के पक्ष में हो गया[2]। कुंवर भीमसिंह (राजसिंहोत) ने राठोड़ों से कहलाया कि सोनिंग के मरजाने से मुसलमान निडर हो गये हैं, अब कुछ वीरता दिखानी चाहिए। तब राठोड़ों ने डीडवाने से पेशकसी लेकर मकराने तथा मेड़ते को लूटा। असदखां ने अपने बेटे ऐतिक़ादखां को ससैन्य उधर भेजा। गांव ईदावड़ में ऐतिक़ादखां की फ़ौज पर राठोड़ों ने हमला किया। वि० सं० १७३८ कार्तिक सुदि १ (ई० स० १६८१ ता० १ नवम्बर) को लड़ाई हुई, जिसमें सोनिंग का भाई अजबसिंह आदि १४ नामी राठोड़ मारे गये[3]। फिर उसी महीने में चांपावत उदयसिंह ने, जो अब अजबसिंह के पीछे सेनानायक बना था, दुर्गादास के भाई खींवकरण (खेमकरण) आदि के साथ भिन्न-भिन्न ज़िलों पर

१. टॉड; राजस्थान; जि० २, पृ० १००३। बांकीदास की ऐतिहासिक बातें; संख्या ११८३। जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० २, पृ० ४६।

२. टॉड; राजस्थान; जि० २, पृ० १००३।

३. वीरविनोद; भाग २, पृ० ८३१। जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० २, पृ० ४६। बांकीदास की ऐतिहासिक बातें; संख्या ११८४। "मुआसिरे आलमगीरी" में सोनिंग का इसी युद्ध में मारा जाना लिखा है, जो ठीक प्रतीत नहीं होता है। संभवतः उक्त पुस्तक में सोनिंग के भाई अजबसिंह को सोनिंग मान लिया हो।

आक्रमण करना आरंभ किया। वे मेवाड़ तक फैल गये और उन्होंने पुर मांडल को लूटकर वहां के हाकिम क़ासिमखां को मार डाला। इन लड़ाइयों में मुसलमान और राठोड़ दोनों ही बहुत मारे गये। मुसलमान राठोड़ों का पीछा करते और लड़ाइयां होतीं। वे किसी राठोड़ को जागीर देकर खुश करते तो भी वह दूसरे राठोड़ों की सहायता के लिए विद्रोही हो जाता।

वि० सं० १७३६ (ई० स० १६८२) में ऊदावत जगराम, जो बादशाह की सेवा में था, बादशाही नौकरी छोड़कर राठोड़ों के साथ जा मिला। उसने जैतारण के थाने को लूटकर दूसरे प्रदेश पर भी धावा किया[1]। जोधा उदयसिंह ने भादराजुण पर हमला किया और खींवकरण के साथ मिलकर फ़ौजदार शेरमुहम्मद पर चढ़ाई की। इसी तरह दूसरे सरदारों ने भी शाही प्रदेश को लूटा। वीजा चांपावत ने सोजत पर हमला कर सीदी से संधि कर ली। जोधावतों ने रामसिंह और उदयभान की अध्यक्षता में रहकर बेराई गांव में मिर्ज़ा नूरअली पर आक्रमण किया। तीन घंटे तक लड़ाई होने के बाद मुसलमानों की लाशों का ढेर हो गया और वे अपना नक़ारा, निशान आदि छोड़कर भाग गये।

तदनन्तर करणोत खींवकरण, ऊदावत राजसिंह, मेड़तिया मोहकमसिंह और चांपावत उदयसिंह आदि अपने दलबल के

1. जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० २, पृ० ४७।

साथ गुजरात की तरफ़ चले तथा अहमदाबाद से ६३ मील उत्तर में खेरालू तक पहुंचे। गुजरात के हाकिम सय्यद मुहम्मद ने उनका पीछा किया और उनको राणपुर के पहाड़ों में भगा दिया। राठोड़ रात को पहाड़ों में ही रहे और सवेरा होते ही उन्होंने लड़ाई शुरू कर दी। इस युद्ध में कूंपावत रामसिंह, करणसिंह, केसरीसिंह, गोकुलदास भाटी आदि कई नामी राठोड़ सरदार मारे गये। उसी वर्ष भाद्रपद मास में बाला राठोड़ विसनदास ने पाली शहर पर चढ़ाई की और नूरअली को मार भगाया। भाटी रामसिंह मुकुन्ददासोत के नेतृत्व में तीन सौ राजपूतों और पांच सौ मुसलमानों के बीच लड़ाई हुई, जिसमें मुसलमान हार गये और उनका सेनापति अफ़ज़लखां मारा गया[1]। उदयसिंह ने सोजत में सीदी पर आक्रमण किया और उससे रुपये लेकर संधि कर ली। अनन्तर मेड़तिया मोहकमसिंह ने मेड़ते में शाही फ़ौज पर हमला कर सय्यदअली को मार डाला और शाही फ़ौज को वहां से निकाल दिया।

इस वर्ष (वि० सं० १७३६) में लड़ाई-दंगे, खूनखराबी, लूटमार बहुत होते रहे। राठोड़ों का बड़ा नुकसान हुआ और उनके अनेक सरदार मारे गये। क्रमशः उनके मनुष्य कम होने लगे, परन्तु बादशाह अपनी सेना बराबर भेजता रहा। राठोड़ों की ऐसी दशा देखकर जैसलमेर के भाटी उनकी सहा-

१. टॉड; राजस्थान; जि० २, पृ० १००४।

यतार्थ आये और उनके पक्ष में लड़कर अपने प्राणों का उत्सर्ग करने को तैयार हुए।

वि०सं० १७४०(ई०स० १६८३)में शाहज़ादा आज़म और वज़ीर असदख़ां दक्षिण में बादशाह से जा मिले और इनायतख़ां अजमेर की हुकूमत पर रहा। उसे कहा गया कि मारवाड़ में लड़ाई बन्द न करे। इसलिए इनायतख़ां ने ग्यारह हज़ार सुशिक्षित सेना को जोधावत और चांपावतों पर आक्रमण करने के लिए भेजा, जिसका बदला लेने के लिए उन्हों(राठोड़ों)ने पाली, सोजत और गोड़वाड़ के प्रदेशों को लूटा। भाटियों ने मंडोर में ख़्वाजा सालाह की फ़ौज पर आक्रमण किया। वि० सं० १७४१ के वैशाख (ई० स० १६८४ अप्रेल) में बगड़ी में घोर युद्ध हुआ, जिसमें रामसिंह, सामंतसिंह आदि भाटी सरदार अपने दो सौ आदमियों के साथ एक हज़ार मुसलमानों को मारकर काम आये। करमसोत और कूंपावतों ने अनूपसिंह की अध्यक्षता में लड़कर गांगाणी और उसतरां के क़िले के भीतर रहनेवाली फ़ौज का संहार किया। मोहकमसिंह मेड़तिये ने अपनी सेना सहित मेड़ते में मुहम्मदअली पर आक्रमण किया, परन्तु मुहम्मदअली ने संधि करने के बहाने से अपने पास बुलाकर धोका देकर इस मेड़तिये सरदार मोहकमसिंह को मार डाला[1]। यह ख़बर बादशाह को मिलने पर बादशाह ने इनायतख़ां को कहलाया

१. टॉड; राजस्थान; जि० २, पृ० १००५।

कि वह सब राठोड़ों को नाराज़ न करे, उनको नौकरी देवे। इसपर इनायतखां ने सुजानसिंह को बुलाकर सोजत दिया[1]।

फिर राठोड़ दुर्गादास के भाई खींवकरण और बेटे तेजकरण ने एक साथ मिलकर फलोदी की तरफ़ धावा किया और जोधपुर तथा सोजत के बीच के बहुतसे गांव लूटे। वि० सं० १७३९ के वैशाख (ई० स० १६८४ अप्रेल) में सोजत के थानेदार बहलोलखां से लड़ाई हुई[2], जिसमें सामंतसिंह जोगीदास विट्ठलदासोत आदि कई राठोड़ मारे गये।

इस वर्ष (वि० सं० १७४१ में) भी मारवाड़ में लड़ाई-झगड़ा कुछ कम न हुआ। सुजानसिंह मारवाड़ के दक्षिण में मुसलमानों से लड़ता और लाखा चांपावत तथा केसर कूंपावत भाटियों और चौहानों से मिलकर जोधपुर की शाही फ़ौज को सर्वदा भयभीत करते। सुजानसिंह के मारे जाने पर संग्रामसिंह जुझारसिंहोत, जो बादशाही मनसबदार था, अपना मनसब छोड़कर राठोड़ों से मिल गया[3]। उसने अपने साथी चौहान चतुरसिंह, कूंपावत धनसिंह, ऊदावत रूपसिंह, जैतावत रामसिंह आदि के साथ सिवाने के प्रदेश पर चढ़ाई की और बालोतरा तथा पचपदरा को लूटा।

१. जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० २, पृ० ४८।

२. वही; जि० २, पृ० ४८।

३. टॉड; राजस्थान; जि० २, पृ० १००९।

वि० सं० १७४२ चैत्र सुदि २ (ई० स० १६८५ ता० २६ मार्च) को सिवाने के क़िलेदार पुरदिलख़ां पर कानाणा के थाने में चढ़ाई कर रतनसिंह, वाला अखैसिंह आदि राठोड़ों ने उसे मय उसके छः सौ आदमियों के मार डाला। भाटी सबलसिंह ने मिर्ज़ा नूरअली पर, जो जोधपुर से तोडा की तरफ़ भाग रहा था, आक्रमण कर उसे मार डाला[1]। फिर मुग़लों ने सबलसिंह पर आक्रमण किया। सबलसिंह अपनी दोनों बेटियों के सिर काटकर, ताकि वे मुसलमानों के हाथ में न पड़ें, मुसलमानों से लड़कर मारा गया। इसके बाद दुर्गादास के भाई खींवकरण ने सांचोर को लूटा[2]।

इस वर्ष वि० सं० १७४२ (ई० स० १६८५) में लखावत और आसावत राठोड़ों ने सांभर में ठहरी हुई बादशाही फ़ौज को क़त्ल किया और फिर गोड़वाड़ से अजमेर तक के प्रदेशों पर धावा किया। मेड़ते में मुसलमानों से लड़ाई हुई, जिसमें राठोड़ हार गये। इस पराजय का बदला लेने के लिए संग्रामसिंह जोधपुर के आसपास के प्रदेशों में आग लगाकर दु(धु)नाड़े गया। वि० सं० १७४३ वैशाख वदि १४ (ई० स० १६८६ ता० ११ अप्रेल) को बिहारी फतहख़ां पर आक्रमण कर उसने उससे जालोर ले

---

१. टॉड; राजस्थान; जि० २, पृ० १००६।

२. जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० २, पृ० ४१।

लिया। अनन्तर राठोड़ विसनदास और जोधपुर के सूबेदार के बीच लड़ाई हुई[1]।

इसी वर्ष जोधा हरनाथ ने खुशहालखां पठान को, जो जोधपुर से मेड़ता जाता था, मारा। फिर सब सरदार मिलकर जालोर की तरफ़ लूटपाट करने को गये।

इस प्रकार इन सात वर्षों में मारवाड़ में हरेक जगह लड़ाई-झगड़े होते रहे। मुसलमान राठोड़ों के उपद्रव से बड़े भयभीत हो गये थे। वहांपर हुकूमत करना बड़ा कठिन हो गया। यद्यपि इन लड़ाइयों में सैकड़ों राठोड़ मारे गये और उनकी स्त्रियों तथा बच्चों को अत्यन्त कष्ट सहने पड़े, तथापि वे मुग़लों को सताने एवं उनके शासन को नष्ट करने में पश्चाद्पद न हुए।

राठोड़ों का महाराजा अजीतसिंह से मिलना—

हम पहले कह चुके हैं कि राठोड़ दुर्गादास महाराजा अजीतसिंह को सिरोही राज्य में मुकुन्ददास खीची के पास रखकर दक्षिण में चला गया था। वि० सं० १७४३ (ई० स० १६८६) में चांपावत, कूंपावत, ऊदावत, मेड़तिया, करमसोत, जोधा आदि मारवाड़ के राजपूतों ने सोचा कि अजीतसिंह

१. जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० २, पृ० ४६।

अब प्रायः आठ वर्ष का हो गया, उससे मिलना चाहिए। वे अपने राजा को देखने के लिए अत्यन्त उत्सुक हुए। तदनन्तर सब सरदारों की ओर से चांपावत उदयसिंह सिरोही जाकर मुकुन्ददास से मिला और उसने सरदारों की इच्छा उसे प्रकट की। मुकुन्ददास ने कहा कि तुमने मुझे अजीतसिंह को नहीं सौंपा, दुर्गादास ने सौंपा है, उसके आने पर दिखाऊंगा। इसपर उदयसिंह ने नाराज़ होकर कहा कि महाराजा केवल दुर्गादास के ही नहीं, किन्तु सब राठोड़ों के हैं। तब मुकुन्ददास ने दुर्गादास को इन बातों की सूचना देते हुए उसे दक्षिण से शीघ्र ही लौटने को लिखा और यह सोचकर कि ऐसा करने से सब राठोड़ असंतुष्ट होंगे, अजीतसिंह के पास जाकर सारी बात कही। इसपर अजीतसिंह राठोड़ों से मिलने को राज़ी हुआ। वि० सं० १७४४ वैशाख वदि ५ (ई० स० १६८७ ता० २३ मार्च) को सिरोही राज्य के पालड़ी गांव में महाराजा अजीतसिंह सब के सामने आया[1]। सब राजपूत इकट्ठे हुए। दुर्जनसाल हाड़ा एक हज़ार सवारों सहित कोटा से आया। चांपावतों ने उस (दुर्जनसाल) के साथ अपनी कन्या (सुजानसिंह की पुत्री

---

१. वीरविनोद; भाग २, पृ० ८३२। जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० २, पृ० ५३ तथा बांकीदास की ऐतिहासिक बातें; संख्या १६८७ में यह संवत् १७४३ दिया है, जो श्रावणादि है, अतः चैत्रादि वि० स० १७४४ होगा।

और सुकनसिंह की वहिन) का विवाह कर दिया, जिससे उनकी शक्ति वढ़ गई। सरदारों ने अजीतसिंह को नज़रें भेंट कीं। राठोड़ सरदार अजीतसिंह को आऊवा ग्राम में ले गये, जहां उसके राजतिलक का दस्तूर हुआ। फिर वह भिन्न-भिन्न स्थानों के सरदारों से मिलकर पोकरण पहुंचा[1]।

उधर राठोड़ों का पत्र पाकर दुर्गादास ने शाहज़ादे से विदा मांगी। अकवर ने उसे विदा देते समय कहा कि मेरे वच्चे मारवाड़ में हैं. उन्हें आप संभालना। यदि शाही आदमी उन्हें पकड़ने को आवें तो मार डालना, वादशाह के हाथ मत सौंपना। दुर्गादास मारवाड़ में आकर कुछ दिनों तक अपने घर पर रहा। पीछे वि० सं० १७४४ के भाद्रपद (ई० स० १६८७ अगस्त-सितम्वर) में वह पोकरण में अजीतसिंह से मिला[2]। इनायतख़ां ने जव यह ख़बर सुनी तो वादशाह से सेना मांगते हुए कहा कि यदि राठोड़ इतने दिनों तक विना राजा के इस तरह लड़ते रहे हैं तो अव राजा के आ जाने से वे न जाने क्या करेंगे? अजीतसिंह सेना सहित सोजत की तरफ़ गया। फ़साद वढ़ता

१. टॉड; राजस्थान; जि० २, पृ० १००८।

२. जोधपुर राज्य की ख्यात (जि० २, पृ० ५४) तथा वांकीदास की ऐतिहासिक वातें; (संख्या १६६२) में लिखा है कि वि० सं० १७४४ कार्तिक वदि ११ (ई० स० १६८७ ता० २१ अक्टोवर) को दुर्गादास अजीतसिंह से गांव भीवरलाई में मिला था।

जानकर इनायतखां ने सिवाने का परगना तथा राहदारी का चौथा हिस्सा अजीतसिंह को देने की प्रतिज्ञा की[1]। फिर इनायतखां ने बड़ी फ़ौज इकट्ठी की, परंतु इसी बीच वह मर गया।

कर्नल टॉड लिखता है कि बादशाह औरंगज़ेब ने अजीतसिंह को अपनी अधीनता स्वीकार करने की शर्त पर पांच हज़ार का मनसब देना चाहा था और उसी समय उसने मुहम्मदशाह (मुहम्मदीराज, जिसको उसने अपने महल में असली अजीत के नाम से पाला था) को जोधपुर भेजना चाहा, परंतु वह जोधपुर को रवाना होते ही मर गया[2]।

मारवाड़ की तत्कालीन अवस्था—

विक्रम संवत् १७३६ से १७४३ (ई० स० १६७६–१६८६) तक की मारवाड़ की लड़ाई की पहली अवस्था हम ऊपर लिख चुके हैं। यह लड़ाई जनता की लड़ाई थी। इतने दिन राठोड़ बिना राजा के लड़े थे और उनका कोई मुख्य नेता भी नहीं था। अब वि० सं० १७४४ (ई० स० १६८७) में उनके ऊपर राजा के

१. वीरविनोद; भाग २, पृ० ८३२। जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० २, पृ० ५३-४।

२. टॉड; राजस्थान; जि० २, पृ० १००८।

हो जाने से और दुर्गादास के दक्षिण से लौटने से राठोड़ों की शक्ति और साहस बहुत बढ़ गया और जगह-जगह उनकी विजय होने लगी। बूंदी के हाड़ों के साथ मिलकर वे मारवाड़ में फैल गये और अपने देश की सीमा से बाहर निकलकर उन्होंने वि० सं० १७४७ (ई० स० १६९०) में फिर मेवात और दिल्ली के पश्चिमी हिस्से तक लूटमार मचाई। बादशाह औरंगज़ेब वि० सं० १७४४ (ई० स० १६८७) तक दक्षिण के सब स्वतंत्र राज्यों को जीत चुका था और इसके दो साल बाद वि० सं० १७४६ (ई० स० १६८९) में मरहटे राजा शंभाजी को मारकर उसने उसकी राजधानी भी ले ली थी। वि० सं० १७४६, १७४७ और १७४८ (ई० स० १६८९, १६९० और १६९१) में मरहटे इन पराजयों के कारण निर्बल हो गये, इसलिए उन दिनों बादशाह निर्भय हो गया। वि० सं० १७४४ (ई० स० १६८७) में अजीतसिंह और दुर्गादास राठोड़ों के नेता बने; इधर औरंगज़ेब ने भी एक बड़े योग्य और साहसी अफ़सर शुजाअतख़ां को जोधपुर का हाकिम नियुक्त किया, जो चौदह वर्ष तक वहां हुकूमत करता रहा। यद्यपि दक्षिण में व्यस्त रहने के कारण बादशाह एक भी मनुष्य शुजाअतख़ां की सहायता के लिए मारवाड़ में भेज नहीं सकता था, तो भी शुजाअतख़ां ने मारवाड़ पर मुग़लों का अधिकार दृढ़ रक्खा।

वि० सं० १७४० से १७४४ (ई० स० १६८३ से १६८७)

तक मारवाड़ की फ़ौजदारी अजमेर की सूबेदारी में शामिल थी। अजमेर एक छोटासा प्रदेश था, जिसपर एक साधारण अफ़सर अपनी थोड़ी फ़ौज और थोड़ी आमदनी से हुकूमत करता था। इसी कारण अजमेर का सूबेदार इनायतख़ां अपनी साधारण शक्ति से राठोड़ों से मुक़ाबला नहीं कर सकता था, परंतु शुजाअतख़ां मारवाड़ का फ़ौजदार होने के अतिरिक्त गुजरात का, जो उन दिनों मुग़ल साम्राज्य में एक बड़ा प्रदेश था, सूबेदार भी था। शुजाअतख़ां की आमदनी और सेना अजमेर के सूबेदार की अपेक्षा बहुत अधिक थी और वह अपनी शक्ति को किस तरह काम में लाना चाहिए यह भी जानता था। वह अपनी सेना को सर्वदा तैयार रखता था और आवश्यकता पड़ने पर शीघ्रता से काम करता था। वह सालभर में छः महीने और कभी-कभी आठ महीने मारवाड़ में रहता था और बाक़ी के महीने गुजरात में। इस तरह वह युद्ध के समय राठोड़ों को रोकता था और दूसरे समय उनसे समझौता भी कर लेता था। उसने कतिपय राठोड़ों को पट्टा, जागीर तथा मनसब देकर अपनी तरफ़ कर लिया था। वि० सं० १७४५ (ई० स० १६८८) में रास्ता चलते व्यापारियों को न लूटने की शर्त पर उसने राठोड़ों को राहदारी का चौथा हिस्सा देना स्वीकार कर लिया था[1]।

---

1. सरकार; औरंगज़ेब; जि० ५, पृ० २७३। टॉड; राजस्थान; जि० २, पृ० १००८।

दुर्गादास के मारवाड़ में आने से लड़ाई की सूरत बदल गई। बूंदी के हाडा दुर्जनसाल के आ मिलने से राठोड़ों को और भी मदद मिल गई। दुर्जनसाल ने अनिरुद्धसिंह पर, जो शाही सेना का एक बड़ा अफ़सर था, हमला कर दिया और उससे बूंदी का क़िला छीन लिया।

दुर्गादास ने दक्षिण से लौटते समय जोधा अखैसिंह को साथ ले आगरे के पास शाही मुल्क हिसार और अजमेर के पास केकड़ी आदि स्थानों को लूटा। फिर वि० सं० १७४४ ज्येष्ठ वदि ५ (ई० स० १६८७ ता० २२ अप्रेल) को मालपुरे में सैयद कुतुब से लड़ाई हुई, जिसमें अनोपसिंह ईसरसिंहोत मारा गया और सैयद के ६० आदमी मारे गये। फिर गांव रतनथल को लूटा, जहां फिर लड़ाई हुई[1]। अनन्तर वह संग्रामसिंह को साथ लेकर सिंध की तरफ़ पेशकसी लेने को गया[2]। वहां से लौटकर उसने पुर मांडल से पेशकसी ली। इसके बाद उसने बहुतसे मुसलमानों को मार डाला एवं अनेक को मारवाड़ से निकालकर उत्तर में शाही प्रदेश पर चढ़ाई की।

उसी वर्ष (वि० सं० १७४४ में) एक बड़ी सेना के साथ दुर्गादास और दुर्जनसाल हाडा ने रोहट, रेवाड़ी आदि स्थानों

१. जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० २, पृ० ५३।

२. वही; पृ० ५४। बांकीदास की ऐतिहासिक बातें; संख्या १९८५-८९।

को लूटकर बादशाह की राजधानी दिल्ली पर भी आक्रमण करने का प्रयत्न किया, परन्तु जब उन्होंने सुना कि दिल्ली से चार हज़ार सवार उन पर भेजे गये हैं, तब वे मारवाड़ को लौट गये। प्रायः उसी समय इनायतख़ां ने ससैन्य राठोड़ों का पीछा किया। दूसरी तरफ़ से दुर्जनसाल निकलकर लूटने की इच्छा से पुर मांडल की तरफ़ चला। उसी समय व्यापारियों का एक दल वहां आकर ठहरा। राठोड़ों ने उस पर आक्रमण किया, परन्तु मांडल का फ़ौजदार दीनदारख़ां[1] वहां आ पहुंचा और युद्ध में शामिल हो गया। फलतः दुर्जनसाल लड़ता हुआ गोली से मारा गया। यह घटना वि० सं० १७४४ फाल्गुन सुदि १३ (ई० स० १६८८ ता० ४ मार्च) को हुई[2]। उसी वर्ष मुसलमानों ने महाराजा अजीतसिंह से सिवाना छीन लिया। तब महाराजा उदयपुर से दक्षिण में छप्पन के पहाड़ों में जाकर रहा। उन दिनों उदयपुर का महाराणा जयसिंह उसी प्रदेश में जयसमुद्र तालाब तैयार करा रहा था। उसने अजीतसिंह का बड़ा आदर-सत्कार किया। वि० सं० १७४५ चैत्र सुदि १४ (ई० स० १६८८ ता० ४ अप्रेल) को राठोड़ दुर्गादास, अखैराज, भगवानदास आदि पर उज्जैन तथा मंदसोर के फ़ौजदार ने आक्रमण किया। लड़ाई हुई, जिसमें

१. जोधपुर राज्य की ख्यात में क़ायमख़ां का नाम है।

२. जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० २, पृ० ५५।

कई घायल हुए[1]।

वि० सं० १७४५ फाल्गुन सुदि ८ (ई० स० १६८९ ता० १७ फ़रवरी) को अजीतसिंह ने राठोड़ तेजकरण और राठोड़ राजसिंह को जालोर से पेशकसी लेने को भेजा। वहां पर रास्ते में उनकी दीवान कमालखां की फ़ौज से लड़ाई हुई, जिसमें सीसोदिया राजसिंह मारा गया।

इनायतख़ां का लड़का जोधपुर से दिल्ली को जा रहा था। राह में जोधा हरनाथ ने उसे पकड़ लिया और उसका माल-असबाब छीन लिया। यह सुनकर शुजावेग को भी, जो अजमेर से उसकी सहायता के लिए जा रहा था, राठोड़ों ने पकड़ लिया और उसकी वही दशा हुई जो इनायतखां के लड़के की हुई थी। मुकुन्ददास चांपावत ने उसे लूट लिया।

वि० सं० १७४६ (ई० स० १६८९) में जोधा हरनाथ, मेड़तिया गोकुलदास आदि ने मेड़ते के सूवेदार मुहम्मदअली को मारा।

वि० सं० १७४७ (ई० स० १६९०) में दुर्गादास ने एक बड़ी विजय प्राप्त की। अजमेर के नये हाकिम सफ़ीख़ां को, जो मारवाड़ के रास्ते पर एक घाटे में ठहरा हुआ था, दुर्गादास ने पराजित कर अजमेर में भगा दिया। जब यह ख़बर बादशाह के पास पहुंची, तब उसने ख़ां को लिखा कि

१. जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० २, पृ० ५५।

यदि वह दुर्गादास को परास्त कर सकेगा तो उसका पद राज्य के सब खानों से बढ़ा दिया जावेगा और यदि न कर सका तो उसके हाथों में पहनने के लिए चूड़ियां भेज दी जावेंगी तथा जोधपुर से शुजाअतखां उसकी जगह पर भेजा जावेगा। इस हुक्म को पाकर सफ़ीखां ने सोचा कि बल से तो वह अजीतसिंह और दुर्गादास को अपने वश में कर नहीं सकता, इसलिए छल से जीतना चाहिए। उसने अजीतसिंह को एक पत्र लिखा कि उसके पास बादशाह ने अजीत को उसका पैतृक राज्य दिलाने की सनद भेजी है, परन्तु वह स्वयं उसे लेने को आवे। महाराजा अजीतसिंह इस पत्र पर विश्वासकर बीस हज़ार राठोड़ों के साथ रवाना हुआ और मुकुन्ददास चांपावत को, उसके साथ कोई धोखा किया गया है या नहीं, इस बात के जानने के लिए, उसने पहिले भेज दिया। मुकुन्ददास अजमेर के पास जाकर सफ़ीखां की चालाकी को जान गया और महाराजा अजीतसिंह को उसने इसकी खबर भेजी। अजीतसिंह अजमेर के पास पहुंच चुका था तब उसे यह खबर मिली, परंतु उसने कहा कि कुछ परवाह नहीं, हम आगे बढ़कर खां के सत्कार को देखें। सफ़ीखां महाराजा को ससैन्य देखकर घबरा गया और उसने घोड़े, जवाहरात आदि चीज़ें महाराजा को भेंट कीं[1]।

१. टॉड; राजस्थान; जि० २, पृ० १००६।

उसी साल (वि० सं० १७४७ में) अजीतसिंह ने मारवाड़ में कई जगह चौथ लगा दी और राहदारी वसूल करने के लिए थाने रक्खे। जब यह बात बादशाह ने सुनी तो वह बहुत अप्रसन्न हुआ। शुजाअतखां ने अजीत से कहा कि आप गुप्त-रूप से चौथ लिया करें, प्रकटरूप से लेने से हम लोग बदनाम होते हैं, तथा आप अपना थाना उठा लें[1]। तब अजीतसिंह ने वैसा ही किया। टॉड के अनुसार वि० सं० १७४५ (ई० स० १६८८) में ही शुजाअतखां ने महाराजा अजीतसिंह को व्यवसायियों को न छेड़ने की शर्त पर चुंगी का चौथा हिस्सा देना स्वीकार कर लिया था[2]।

विक्रम संवत् १७४८ (ई० स० १६९१) में मेवाड़ में उदयपुर के महाराणा जयसिंह और उसके कुंवर अमरसिंह में अनबन हो गई। महाराणा ने गोड़वाड़ ज़िले में जाकर सेना तैयार की और दुर्गादास को बुलाया। दुर्गादास तीस हज़ार फ़ौज सहित महाराणा की मदद के लिए गया और उसने महाराणा से कहा कि मुसलमान (बादशाह) हिन्दुस्तान को अपने अधिकार में करना चाहता है। हमारा देश (मारवाड़) तो हिल गया और अब आप के देश में विरोध होने लगा, यह बात अच्छी नहीं।

---

१. जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० २, पृ० ४७। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८३२।

२. टॉड; राजस्थान; जि० २, पृ० १००८।

इस प्रकार महाराणा को समझाकर उसने पिता-पुत्र का झगड़ा मिटा दिया। फिर महाराणा के पास से लौटकर उसने तोडा की तरफ़ जाकर पेशकसी ली और फिर पुर मांडल से[1]।

वि० सं० १७४६ आषाढ़ वदि १४ (ई० स० १६६२ ता० ३ जून) को दुर्गादास ने उदयपुर से लौटकर सीधा तोडे पर चढ़ाईकर उसे लूटा और आषाढ़ सुदि १४(ता० १७जून) को अजमेर के सूबेदार से लड़ाई की[2]।

उस वर्ष मारवाड़ में कुछ शान्ति रही, क्योंकि अजमेर का हाकिम सफ़ीख़ां शाहज़ादा अकबर की लड़की को, जो ई० स० १६८१ (वि० सं० १७३७) में अपने पिता के भागने के समय से ही राठोड़ों के पास रहती थी, बादशाह को देने की बातचीत राठोड़ों के साथ कर रहा था, परन्तु इस बातचीत से कुछ काम न निकला। इसका कारण यह था कि वास्तव में बादशाह औरंगज़ेब अजीतसिंह को कुछ देना नहीं चाहता था[3]। इसलिए वि० सं० १७५० (ई० स० १६६३) में मारवाड़ में फिर लड़ाई शुरू हो गई। अजीतसिंह दुर्गादास के

1. जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० २, पृ० ५८।

2. वही; पृ० ५६।

3. जोधपुर राज्य की ख्यात (जि० २, पृ० ६०) में लिखा है कि सफीख़ां अजीतसिंह को अजमेर का सूबा जागीर में देना चाहता था, परन्तु अजीतसिंह ने स्वीकार नहीं किया।

कहने के अनुसार बिलाड़ा में जा ठहरा और उसने शाही सेना से लड़ाई आरंभ की। यह सुनकर शुजाअतखां शीघ्र ही मारवाड़ में आया और जोधपुर, जालोर और सिवाना के फ़ौजदारों ने मिलकर अजीतसिंह को फिर पहाड़ों में भगा दिया, परन्तु इसके बाद मुग़लों की विजय का अन्त हो गया, जिसका कारण यह था कि उन दिनों दक्षिण में मरहटों के साथ लड़ाई बहुत बढ़ गई थी, जिससे बादशाह को उत्तर भारत में सेना भेजना कठिन हो गया। बाला राठोड़ आखा से मुग़लों की लड़ाई हुई, जिसमें वह हार गया, परन्तु इसके बाद राठोड़ों से उनकी फिर लड़ाई हुई, जिसमें मुकुन्ददास चांपावत ने मोकलसर में चांक के हाकिम को मय उसके साथियों के क़ैद किया।

वि० सं० १७५१ (ई० स० १६९४) में मुसलमानों की दशा ऐसी बिगड़ी कि बहुतसे शाही मुल्क राठोड़ों को चौथ और ख़िराज देने लगे और कई लोग लड़ाइयों से थककर राठोड़ों के सेवक बन गये। उसी वर्ष मुग़ल अफ़सर लश्करखां विजयपुर में अजीतसिंह से युद्ध में हार गया। अनन्तर दिन-दिन महाराजा अजीतसिंह की विजय की आशा बढ़ती गई और उधर अपनी पोती के बड़े होने के कारण बादशाह की चिन्ता भी दिन-दिन बढ़ने लगी[1]। बादशाह ने जोधपुर के हाकिम शुजाअतखां को लिखा

१. टॉड; राजस्थान; जि० २, पृ० १०१० ।

कि जिस तरह हो वह उसके कुल की मर्यादा की रक्षा करे। उसने नारायणदास कुलंवी को दुर्गादास के पास भेजकर कहलाया कि वह अकबर के लड़के और लड़की को बादशाह को सौंप देवे, जिसके बदले में बादशाह उसे मनसब देगा। दुर्गादास ने उत्तर दिया कि पहले दरबार (अजीतसिंह) को मनसब मिले, पीछे मैं लूंगा[1]।

उसी वर्ष दुर्गादास, मुकुन्ददास, अजीतसिंह आदि ने मिलकर जोधपुर और जालोर के बीच के सब गांवों से पेशकसी ली।

विक्रम संवत् १७५३ (ई० स० १६९६) में महाराणा जयसिंह और उसके कुंवर में फिर वैमनस्य उत्पन्न हो गया। इस बार जयसिंह ने अजीतसिंह को झगड़ा मिटाने को बुलाया। अजीतसिंह ने मेवाड़ जाकर पिता-पुत्र के बीच शान्ति करा दी, जिससे प्रसन्न होकर महाराणा ने अपने भाई गजसिंह की पुत्री का विवाह अजीतसिंह के साथ कर दिया[2]। इस विवाह से बादशाह का अजीतसिंह के महाराजा जसवंतसिंह का कृत्रिम पुत्र होने का संदेह वृथा प्रमाणित हुआ।

---

१. जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० २, पृ० ६१।

२. वीरविनोद; भाग २, पृ० ८३२।

वादशाह की राठोड़ों से संधि— Proposed peace with Marwar

हम पहले लिख चुके हैं कि विक्रम संवत् १७४६ (ई० स० १६९२) में वादशाह औरंगज़ेब ने पहले-पहल राठोड़ों से संधि करने की इच्छा प्रकट की थी, परंतु उस समय की वातचीतों से कुछ काम नहीं वना। वि० सं० १७५१ (ई० स० १६९४) में वादशाह ने फिर शुजाअतखां की मारफ़त वातचीत शुरू की, पर उसमें भी उसे सफलता न मिली। वि० सं० १७४६ (ई०स० १६९२) से लगाकर आगे के कुछ वर्षों में जव वादशाह को दक्षिण में रामचन्द्र अमात्य, धनाजी जादव और संताजी घोरपड़े की अध्यक्षता में मरहटों की शक्ति प्रवल ज्ञात होने लगी[1], तव उसे मारवाड़ में सुलह करने की आवश्यकता हुई। उस समय इस काम को करने के लिए शुजाअतखां जैसा योग्य अफ़सर भी वर्तमान था।

एक वात और भी थी जो वादशाह को सुलह करने के लिए अधिक प्रेरित कर रही थी। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, शाहज़ादा अकवर की एक लड़की और एक लड़का राठोड़ों के पास रह गये थे। वादशाह उस लड़की को अपने पास मंगवाना चाहता था, क्योंकि उस समय उस लड़की की अवस्था प्रायः १३ साल की हो गई थी। वादशाह को अपने

१. देखो ग्रैन्ट डफ़; हिस्ट्री ऑव् दि मरहटाज़्; जि० १, पृ० २८९-९४।

वंश के गौरव का ख़याल सब से पहले था, और वह ज्यों-ज्यों बड़ी होती जाती थी, त्यों-त्यों बादशाह की चिन्ता बढ़ती जाती थी। शाही वंश के किसी भी व्यक्ति का राजपूतों की अधीनता में रहना बादशाह सहन नहीं कर सकता था और वह तो थी उसकी पोती, इसे वह किस तरह सहन कर सकता था। अतएव अपनी पोती को अपने पास लाने के लिए उसने राठोड़ों से संधि करने की आवश्यकता समझी, किन्तु सुलह तब ही हो सकती थी, जब वह महाराजा अजीतसिंह को उसके पिता की गद्दी दे देता। कुछ दिनों तक बादशाह इस चेष्टा में रहा कि वह लड़ाई जारी रक्खे, ताकि जोधपुर तथा मारवाड़ उसके हाथ में रहे और अजीतसिंह को एक छोटीसी जागीर देकर राज़ी करावे, परंतु जब उसका यह उद्योग व्यर्थ हुआ, तब वि० सं० १७५३ (ई० स० १६९६) में उसने शुजाअतखां को हुक्म दिया कि वह दुर्गादास को जागीर देकर अकबर की लड़की और लड़के को उसके पास से लेकर बादशाह के पास पहुंचावे। बादशाह ने महाराजा अजीतसिंह को भी मारवाड़ का कुछ हिस्सा देना स्वीकार किया।

कर्नल टॉड ने लिखा है कि वि० सं० १७५३ (ई० स० १६९६) में बादशाह ने दुर्गादास को पांच हज़ार का मनसब देना चाहा, परन्तु दुर्गादास ने स्वीकार नहीं किया[1]।

---

1. टॉड; राजस्थान; जि० २, पृ० १०१०।

दुर्गादास का अकबर की पुत्री देना—

वि० सं० १७५३ (ई० स० १६९६) में शुजाअतखां ने बादशाह की राठोड़ों से संधि करने की आज्ञा पालन करने के लिए पाटन के नागर ब्राह्मण ईश्वरदास[1] (ईसरदास) को, जो जोधपुर का शिकदार व अमीन था और बहुतसे राठोड़ों का मित्र था, इस काम के लिए नियुक्त किया। ईश्वरदास ने स्वयं इस विषय पर लिखा है कि शाहज़ादा अकबर का छोटा लड़का बुलन्दअख़तर और लड़की सफ़ियत्तुन्निसा बहुत छोटे होने के कारण रास्ते का कष्ट सहने में असमर्थ थे, जिससे उन्हें वि० सं० १७३७ (ई० स० १६८१) में उनके पिता ने अपने भागने से पूर्व राठोड़ों के पास रख दिया था। दुर्गादास ने उन बच्चों को अति दुर्गम एवं गुप्त स्थान में गिरधर रघुनाथ जोशी के पास रक्खा था। वे बच्चे बहुत सावधानी से पाले जाते थे और उनको मुसलमानी धर्म की शिक्षा भी दी जाती थी।

ईश्वरदास के दुर्गादास के पास कई बार आने-जाने के बाद दुर्गादास बादशाह से संधि करने को राज़ी हुआ और उसने एक पत्र ईश्वरदास को लिखा कि यदि शुजाअतखां बादशाह के पास से राज़ीनामे का जवाब आने तक मारवाड़ में लड़ाई बन्द

१. जोधपुर राज्य की ख्यात (जि० २, पृ० ७९) में सांचोर के हाकिम गिरधर रघुनाथ जोशी का नाम दिया है।

रक्खे तथा उसे स्वतंत्रता पूर्वक मारवाड़ में फिरने देवे तो वह सफ़ियतुन्निसा को बादशाह के पास भेज देवेगा। वह इस बात पर झट राज़ी हो गया। ईश्वरदास ने दुर्गादास से फिर मिलकर उसे शाहज़ादी को सौंपने के लिए तैयार किया। फिर उसने शुजाअतखां के पास जाकर सवारी आदि का प्रबन्ध कर दुर्गादास के पास से शाहज़ादी को लेकर शुजाअतखां के पास पहुंचाया। फिर बादशाह ने वि० सं० १७५३ आषाढ़ वदि ७ (ई० स० १६९६ ता० ११ जून) को शाहबेग नामक एक आदमी को उस लड़की को लाने के लिए शुजाअतखां के पास भेजा। शाहज़ादी के दरबार में पहुंचने पर बादशाह ने तत्काल आज्ञा दी कि शाहज़ादी को इसलाम मज़हब की शिक्षा देने के लिए एक शिक्षिका नियुक्त की जावे, परंतु शाहज़ादी ने अर्ज़ किया कि दुर्गादास ने इस विषय पर ध्यान देकर अजमेर से एक मुसलमानी शिक्षिका बुलवाकर उसे क़ुरान पढ़ाया और कण्ठस्थ कराया है। इस बात को सुनकर बादशाह औरंगज़ेब बहुत खुश हुआ और दुर्गादास के महत्त्व को समझकर उसके पहले के किये हुए सब अपराधों को भूल गया। उसने उसी समय बेग़म से पूछा कि कहो दुर्गादास अपने कामों के लिए क्या इनाम चाहता है। बेग़म ने उत्तर दिया कि ईश्वरदास को मालूम है। तब बादशाह ने ईश्वरदास को अपने पास बुलाकर उससे बातचीत करने के पश्चात् दुर्गादास के लिए मनसब

तथा कुछ (रुपयों का) भत्ता मंजूर किया । उसने मारवाड़ में मेड़ते का परगना और पीछे से धंधुक (अहमदाबाद ज़िले में) दुर्गादास को जागीर में दिया, परंतु उसे पाटन का फ़ौजदार बनाकर वहीं रहने का हुक्म दिया[1] । ईश्वरदास को दो सौ सवारों का अफ़सर बनाकर तथा सिरोपाव आदि देकर बुलन्द-अख़्तर और दुर्गादास को शाही दरबार में लाने के लिए बादशाह ने फिर मारवाड़ में भेजा । ये सब काम करने में प्राय: दो साल का समय लग गया, जिसका कारण यह था कि दुर्गादास ने बादशाह से अजीतसिंह को जोधपुर देने के लिए आग्रह किया था, परन्तु बादशाह उसे केवल मारवाड़ का एक छोटासा अंश देकर राज़ी करना चाहता था । दूसरी बात यह थी कि बादशाह केवल दुर्गादास को बड़े से बड़ा मनसब देकर भी सन्तुष्ट नहीं कर सकता था । राठोड़ दुर्गादास अपने स्वामी अजीतसिंह के लिए सम्पूर्ण मारवाड़ राज्य बादशाह के हाथ से छुड़ाना चाहता था । वह जानता था कि शाहज़ादे अकबर के बेटे बुलन्दअख़्तर को अपने पास रखने से बादशाह को हर समय यह चिन्ता थी कि कहीं ऐसा न हो कि उस-(बादशाह)का कोई शक्तिशाली शत्रु उस लड़के का पक्ष

१. सरकार; औरंगज़ेब; जि० ५, पृ० २८३ । बॉम्बे गैज़ेटियर; जि० १, भाग १, पृ० २८० । इसमें अकबर के बेटे और बेटी दोनों को एक साथ सौंपना लिखा है ।

लेकर उसे दिल्ली के तख़्त का हक़दार ज़ाहिरकर बादशाह से गद्दी छीनने को तैयार हो जावे ।

दुर्गादास का अकबर के पुत्र को सौंपना—

महाराजा अजीतसिंह का वि० सं० १७५३ (ई० स० १६९६) में मेवाड़ के महाराणा जयसिंह के भाई गजसिंह की पुत्री से विवाह होने के पश्चात् उसके मन के विचारों में बहुत कुछ परिवर्तन हो गया। इतने दिन उसने जंगल और पहाड़ों में रहते हुए जैसे-तैसे बिताये । अब उसका विवाह हो चुका था, इसलिए उसे रहने के लिए एक स्थायी स्थान और ख़र्च के लिए स्थिर आमदनी की आवश्यकता हुई। इस बात को सोचते हुए ई० स० १६९८ (वि० सं० १७५५) में दुर्गादास ने बादशाह से अपनी मांग कुछ कम कर दी और बादशाह ने भी अजीतसिंह को मनसब तथा जागीर दे दी ।

ई० स० १६९६ (वि० सं० १७५३) में बादशाह के दरबार से लौटने के बाद ईश्वरदास का दुर्गादास के पास प्रायः आना-जाना होता था। जब उसने शपथ खाकर शुजाअतख़ां की तरफ़ से दुर्गादास को पूरा विश्वास दिलाया और जब दुर्गादास को बादशाह के पास से अपनी जागीर के परवाने मिल चुके, तब वह अकबर के पुत्र बुलन्दअख़तर को लेकर ईश्वरदास के

साथ अहमदाबाद और वहां से सूरत गया। वहां पर अनेक शाही अफ़सर उस लड़के की अगवानी करने तथा उसे शाही दरबार का अदब-क़ायदा सिखाने आये, परन्तु उसकी दशा कुछ विचित्र थी, क्योंकि वह बिलकुल नहीं बोलता था।

बुलन्दअख़तर की यह दशा वास्तव में कुछ आश्चर्यजनक नहीं थी, क्योंकि वह जन्म से ही गांव के किसानों के बीच में रहा था तथा उसने कभी शहर या राजदरबार नहीं देखा था और न उसे किसी सभ्य पुरुष से बातचीत करने का मौक़ा मिला था। वह लौकिक भाषा नहीं जानता था और न उसे राजपुरुषों से बोलने का तरीक़ा मालूम था। औरंगज़ेब तथा उसके सभासद उसकी यह दशा देखकर बहुत चकित और दुःखी हुए तथा मन में सोचने लगे कि बादशाह का पोता केवल ग्रामीण लोगों की बोली ही जानता है। बादशाह के दरबार में आते ही वह बहुत लज्जित हो गया और बादशाह से अत्यन्त डरने लगा, क्योंकि वह राजपूतों से सुन चुका था कि औरंगज़ेब उसके पिता का वैरी था और वह अब राजपूत रक्षकों के पास से निकलकर उसी वैरी के हाथ सौंपा गया था। ऐसी हालत में उसे सबसे अच्छा उपाय यही दिखाई पड़ा कि वह गूंगे की तरह चुप रहे। शाही लोगों ने उसे धीरे-धीरे सभ्यता सिखाना आरंभ किया और कुछ समय बाद वह शाही सेवा

में नियुक्त किया गया।

बुलन्दअख़तर को सुपुर्द करने के बाद जब दुर्गादास बादशाह के डेरे में पहुंचा तो हुक्म हुआ कि वह निःशस्त्र बादशाह के सामने लाया जावे। इस हुक्म को सुनते ही दुर्गादास ने झट अपने हथियार खोल डाले। जब बादशाह को यह ख़बर मिली तो उसने दुर्गादास को हथियार सहित लाने का हुक्म दिया। ज्योंही दुर्गादास बादशाह के पास पहुंचा, ख़ज़ाने के अफ़सर रुहुल्लाख़ां ने रुमाल से उसके हाथों को बांधकर बादशाह के पास पेश किया। बादशाह ने हुक्म दिया कि उसके हाथ खोल दिये जावें। तदनन्तर दुर्गादास को तीन हज़ारी ज़ात व ढाई हज़ार सवार का मनसब, एक जड़ाऊ छुरा, एक सोने का पदक, एक मोती का हार और एक लाख रुपये इनाम में दिये गये। फिर दुर्गादास के अर्ज़ करने पर बादशाह ने महाराजा अजीतसिंह को भी मनसब दिया तथा जालोर, सांचोर और सिवाना आदि परगने जागीर में देकर उसे वहां का फ़ौजदार बनाया। इस तरह बादशाह ने ई० स० १६९८ (वि० सं० १७५५) में दुर्गादास से सुलह कर ली[1]।

"वीरविनोद" में लिखा है कि वि० सं० १७५४ के पौष (ई० स० १६९७ के दिसम्बर) में अहमदाबाद के सूबेदार शुजा-

---

1. सरकार; औरंगज़ेब; जि० ५, पृ० २८६। बॉम्बे गैज़ेटियर; जि० १, भाग १, पृ० २९०-९१। फ़रहती; तुहफ़ए राजस्थान; पृ० १८३।

अतखां की मारफ़त दुर्गादास आलमगीर के पास हाज़िर हुआ और उसने शाहज़ादे अकबर के बेटे व बेटी को पेश किया, जो उसके पास थे। उसको बादशाह ने एक लाख रुपया इनाम, तीन हज़ारी ज़ात व दो हज़ार सवार का मनसब और मेड़ता आदि परगने जागीर में दिये। उसके साथी दूसरे राठोड़ों को भी मनसब और जागीरें मिलीं। राठोड़ मुकुन्ददास को पाली की जागीर और छः सौ सवार का मनसब मिला। महाराजा अजीतसिंह को भी वि० सं० १७५४ ज्येष्ठ सुदि १३ (ई० स० १६९७ ता० २३ मई) को डेढ़ हज़ारी ज़ात व पांच सौ सवार का मनसब और जालोर जागीर में मिला[1]।

कर्नल टॉड ने लिखा है कि वि० सं० १७५७ (ई० स० १७००) में अजीतसिंह को अपना पैतृक राज्य मिल गया। जोधपुर पहुंचने पर महाराजा ने प्रत्येक दरवाज़े पर भैंसे का बलिदान किया और शाहज़ादा आज़म उसके आगे-आगे चला[2]। टॉड का यह कथन भ्रमपूर्ण है। महाराजा अजीतसिंह को वि० सं० १७५७ में जोधपुर नहीं मिला, जैसा कि आगे ज्ञात होगा और न शाहज़ादा आज़म उन दिनों जोधपुर का फ़ौजदार था।

---

१. वीरविनोद; भाग २, पृ० ८३३। जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० २, पृ० ९२-९३। इसमें दुर्गादास को मारवाड़ में जैतारण तथा गुजरात में रायपुर भी मिलना लिखा है।

२. टॉड राजस्थान; जि० २, पृ० १०११। शाहज़ादा आज़म ई० स० १७०१ में जोधपुर का फ़ौजदार बनाया गया था।

दुर्गादास का दोबारा विद्रोही होना—

बादशाह औरंगज़ेब से दुर्गादास की संधि ई० स० १६६८ (वि० सं० १७५५) में हुई थी, परंतु इसके तीन वर्ष के भीतर ही फिर दोनों में वैमनस्य उत्पन्न हो गया। दुर्गादास को मारवाड़ से बाहर रखने के अभिप्राय से ही बादशाह ने उसे गुजरात में पाटन का फ़ौजदार नियुक्त किया था। ई० स० १७०१-२ (वि० सं० १७५८-५६) में उसका बादशाह से दूसरी बार विद्रोह आरंभ हुआ। वास्तव में बात यह थी कि महाराजा अजीतसिंह और दुर्गादास दोनों को ही बादशाह पर विश्वास नहीं था, इसलिए वे बादशाह के दरबार से दूर रहना चाहते थे। ई० स० १७०१ (वि० सं० १७५८) के प्रारंभ में बादशाह ने अजीतसिंह को कई बार अपने पास बुलाया, परंतु अजीतसिंह किसी न किसी बहाने से टालता रहा। ई० स० १७०१ ता० ६ जुलाई[1] (वि० सं० १७५८ श्रावण वदि १) को शुजाअतखां के मरने के बाद उसके जैसा कोई योग्य अफ़सर न आया, जो राठोड़ों को बादशाह के विरुद्ध विद्रोह करने से रोकता। नया हाकिम मुहम्मद आज़मशाह बहुत तेज़ मिज़ाज का था। उसने दुर्गादास को पाटन का शासक

१. बॉम्बे गैज़ेटियर (जि० १, भाग १, पृ० २६१) में इसकी मृत्यु ई० स० १७०३ में होना लिखा है।

नियुक्त किया, परंतु शीघ्र ही राठोड़ों से मिलकर विद्रोह करने के संदेह पर बादशाह ने उसे हुक्म दिया कि वह किसी तरह दुर्गादास को अहमदाबाद में अपने दरबार में बुलाकर उसे क़ैद कर ले या उसे मार डाले ताकि वह अजीतसिंह तथा दूसरे सरदारों को फिर कभी न उकसा सके। यह आज्ञा पाकर मुहम्मद आज़म ने दुर्गादास को उससे मिलने के लिए अपने निवासस्थान अहमदाबाद में बुलाया। उसके एक अफ़सर सफ़दरख़ां बाबी ने, जो शुजाअतख़ां से नाराज़ होकर मालवे को चला गया था, दुर्गादास को शाहज़ादा आज़म के दरबार में क़ैद करने या मार डालने का बीड़ा उठाया। आज़म ने दुर्गादास को अपनी राजसभा में आने का निमंत्रण भेजा। राठोड़ दुर्गादास ने अपने साथियों सहित पाटन से चलकर अहमदाबाद के पास साबरमती नदी के किनारे बारेज या करीज नामक एक गांव में अपना डेरा किया। जिस दिन दुर्गादास को शाहज़ादे के दरबार में उपस्थित होना था, उसी दिन शाहज़ादे ने शिकार को जाने के बहाने से अपनी फ़ौज को तैयार रख छोड़ा था। सब मनसबदारों को वहां पर खड़ा कर दिया गया था और सफ़दरख़ां अपने लड़के तथा आदमियों के साथ हथियारबन्द होकर दरबार में हाज़िर हुआ। शाहज़ादे ने वहां पहुंचकर दुर्गादास को लाने के लिए हुक्म दिया। इसके पहिले दिन एकादशी होने से दुर्गादास ने व्रत किया था,

इसलिए उसने उस दिन सभा में जाने से पहिले भोजन कर लेना चाहा, परंतु शाहज़ादे के पास से वारंवार उसे बुलाने को दूत आने के कारण उसके मन में संदेह पैदा हो गया और जब उसने सुना कि शाहज़ादे की फ़ौज हथियारवन्द तैयार खड़ी है तब उसका यह संदेह दृढ़ हो गया। विना कुछ खाये ही वह अपने डेरे और सामान में आग लगाकर अपने साथियों के साथ मारवाड़ की तरफ़ रवाना हो गया। मुग़ल सेना ने उसका पीछा किया। पाटन को जाते हुए रास्ते में सफ़दरख़ां और अच्छे-अच्छे मुग़ल सवार भागते हुए राजपूतों तक पहुंच गये। यह देखकर दुर्गादास के नवयुवक पोते (अनोपसिंह) ने दुर्गादास से कहा कि विना घायल हुए युद्धक्षेत्र को छोड़ना लज्जा की वात है। दुर्गादास के पुत्र महेकरण ने कहा कि इस तरह काम नहीं वनेगा। हम लोग जाकर शत्रु का रास्ता रोकते हैं, तब तक आप यहां से निकल जावें। ऐसा कहकर उस बहादुर युवक ने मुसलमानों से लड़ाई आरंभ कर दी और वह अपने साथियों सहित लड़कर मारा गया। दूसरी तरफ़ सफ़दरख़ां का लड़का और दूसरे मुग़ल अफ़सर घायल हुए। इस युद्ध से दुर्गादास को कुछ समय मिल गया, जिसमें वह वहां से ६० मील दूर ऊँझा-उनाव (पाटन से चालीस मील पूर्व) तक पहुंच गया और रात वीतने पर फिर आगे चला। पाटन पहुंचकर वह अपने परिवार को साथ लेकर मारवाड़ की तरफ़

रवाना हो गया। शाही लोगों ने पाटन में पहुंचकर दुर्गादास के कोतवाल को मार डाला और फिर निराश होकर दुर्गादास का पीछा करना छोड़ दिया[1]। इस लड़ाई में दुर्गादास के दो पुत्र महेकरण और अभयकरण भी मारे गये[2]।

उपर्युक्त घटनाओं से इस बात में सन्देह नहीं रह जाता कि ई० स० १७०१ (वि० सं० १७५८) में नीति-कुशल शुजाअतखां के मरने और उसकी जगह घमंडी आज़म के हाकिम बनाये जाने से राठोड़ों से फिर लड़ाई शुरू हो गई। वास्तव में उस समय से राठोड़ों के स्वतंत्रता-संग्राम की तीसरी अवस्था आरम्भ हुई। इस संग्राम में बहुत बलिदान करने के बाद विजयश्री राठोड़ों पर प्रसन्न हुई और औरंगज़ेब के मरने के बाद थोड़े समय के भीतर ही जोधपुर पर उनका अधिकार हो गया, जैसा कि आगे बतलाया जावेगा।

---

१. सरकार; औरंगज़ेब; जि० ५, पृ० २८८-८९। बॉम्बे गेज़ेटियर; जि० १, भाग १, पृ० २९२।

२. वीरविनोद; भाग २, पृ० ८३३। जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० २, पृ० ६५। शेषोक्त पुस्तक (पृ० ६४) में इस घटना का वि० सं० १७६२ कार्तिक सुदि १२ (ई० स० १७०५ ता० १८ अक्टोबर) को होना लिखा है।

बादशाह से पुनः मेल—

दुर्गादास के पाटन से मारवाड़ में आने के बाद महाराजा अजीतसिंह ई० स० १७०२ (वि० सं० १७५६) में उससे मिल गया और यत्र-तत्र मुसलमानों पर आक्रमण करने लगा, परन्तु वास्तव में वह मुसलमानों का अधिक विगाड़ नहीं कर सका। लगातार लड़ाई-झगड़े, अनावृष्टि और दुर्भिक्ष पड़ने के कारण ई० स० १६६६ (वि० सं० १७५३) में देश की यह हालत हो गई थी कि पाटन से जोधपुर तक जलाशय किंवा घास का मैदान दिखाई नहीं देता था। प्रायः पच्चीस वर्ष तक के इस प्रकार लड़ाई-दंगे से राठोड़ बहुत थक गये थे। ई० स० १७०२ (वि० सं० १७५६) में आज़मशाह के जोधपुर में आने पर अजीतसिंह जालोर चला गया। कुछ राठोड़ उदयपुर के महाराणा के पास चले गये और कई राठोड़ मुग़लों की सेवा में प्रविष्ट हो गये। उसी वर्ष मुसलमानों का अत्याचार सबसे अधिक हुआ, परंतु इन सबों से बढ़कर एक बात और भी हुई। महाराजा अजीतसिंह और दुर्गादास के बीच कुछ नाराज़गी पैदा हो गई, जिससे बादशाह औरंगज़ेब को बहुत सुविधा हुई। अजीतसिंह में उसके पिता जसवंतसिंह के समान गुण नहीं थे। दुर्गादास बादशाही मनसबदार था, बादशाह के दरबार के उसके सम्मान तथा राजपूतों में उसकी लोकप्रियता को वह कम

सहन कर सकता था। उस समय जब कि और सब बातें बादशाह के विरुद्ध हो रही थीं, बादशाह औरंगज़ेब को राठोड़ नेताओं की आपस की इस अनबन से बहुत अच्छा मौक़ा मिल गया। इसी अनबन के कारण वह (बादशाह) अजीतसिंह को और भी पांच वर्ष तक उसके राज्य से अलग रख सका। यदि अजीतसिंह दुर्गादास से मिलकर कुछ दिन तक और काम करता तो संभव था कि मारवाड़ मुसलमानों के हाथ से ई० स० १७०७ (वि० सं० १७६३) के बजाय ई० स० १७०२-३ (वि० सं० १७५६-६०) में ही छुड़ा लिया जाता।

ई० स० १७०४ (वि० सं० १७६१) में जब बादशाह ने अपने को चारों तरफ़ शत्रुओं से घिरा हुआ पाया, तब उसने जोधपुर के हाकिम मुर्शिदकुली की मारफ़त अजीतसिंह को मेड़ता जागीर में देकर उससे सुलह करली। तदनन्तर ई० स० १७०५ के नवम्बर (वि० सं० १७६२ मार्गशीर्ष) में बादशाह ने शाहज़ादे आज़म की मारफ़त दुर्गादास से मेल कर लिया और उसे पहले का मनसब देकर गुजरात में पहले के पद (पाटन की फ़ौजदारी) पर नियुक्त किया[1]।

१. सरकार; औरंगज़ेब; जि० ५, पृ० २६१।

अजीतसिंह का जालोर लेना—

बादशाह की तरफ़ से मेड़ता मिलने के बाद अजीतसिंह ने मेड़तिया कुशलसिंह और धांधल गोविन्ददास को मेड़ते पर अधिकार करने को भेजा। इसपर नागोर के राव इन्द्रसिंह के पुत्र मोहकमसिंह ने, जो बादशाह की तरफ़ से मेड़ते के थाने पर रक्खा गया था और जिसने अजीतसिंह की बहुत सेवा बजाई थी, महाराजा से नाराज़ होकर बादशाह को एक पत्र लिखा कि यदि उसे मारवाड़ की हुकूमत पर बादशाह नियुक्त करे तो वह हिन्दू और मुसलमान दोनों को ही प्रसन्न रखकर काम करेगा[1]। मुर्शिदकुली की जगह पर जफ़रखां (जफ़रकुलीखां) भेजा गया। तब मोहकमसिंह ने वि० सं० १७६२ (ई० स० १७०५) में दो हज़ार सवारों के साथ जालोर में अजीतसिंह पर आक्रमण किया। अजीतसिंह अपना सामान, गहना, कपड़ा और ज़नाने को साथ लेकर बाहर निकल गया और मोहकमसिंह ने जालोर का क़िला लेकर महलों में प्रवेश किया। यह ख़बर सुनकर सब राठोड़ सरदार अजीतसिंह के पास एकत्र हुए। बड़े भारी लश्कर के साथ महाराजा जालोर की तरफ़ रवाना हुआ। मोहकमसिंह डरकर जालोर छोड़ भागा। रास्ते में अजीतसिंह से मुक़ाबला हुआ, जिसमें मोहकमसिंह के बहुत-

१. टॉड; राजस्थान; जि० २, पृ० १०११।

से आदमी मारे गये और उसका बहुतसा सामान महाराजा अजीतसिंह ने छीन लिया। मोहकमसिंह मेड़ते में जा छिपा, परंतु अजीतसिंह ने वहां भी उसका पीछा किया। जोधपुर के फ़ौजदार जफ़रकुलीखां के समझाने से अजीतसिंह ने उसे छोड़ दिया और जालोर के क़िले पर दूसरी बार अपना अधिकार जमा लिया[1], परंतु जालोर मिलने से ही मारवाड़ में शान्ति नहीं हुई, क्योंकि उन दिनों मारवाड़ की दशा बहुत बुरी हो गई थी। मोहकमसिंह को हराने से अजीतसिंह का यश तथा शक्ति बढ़ गई और वह ऐसे समय की प्रतीक्षा में रहा कि कब उसे जोधपुर लेने का सुयोग मिले।

बादशाह के अन्तिम दिन और राठोड़ों की विजय—

बादशाह औरंगजेब के राज्यकाल के अंतिम वर्ष ई० स० १७०६ (वि० सं० १७६३) में मरहटों ने गुजरात पर आक्रमण किया। उन्होंने ई० स० १७०६ ता० १५ मार्च (वि० सं० १७६३. चैत्र सुदि १२) को धनाजी जादव की अध्यक्षता में रतनपुर (राजपीपला में) में मुसलमानों को बुरी तरह से

1. टॉड; राजस्थान; जि० २, पृ० १०११। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८३३। जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० २, पृ० ६७-६८।

हराया[1]। मुसलमानों की इस पराजय को देखकर उनके सब शत्रुओं का साहस बढ़ गया। महाराजा अजीतसिंह भी विद्रोह करने को तीसरी बार खड़ा हुआ और राठोड़ दुर्गादास ने भी बादशाह की सेवा तथा मनसब को छोड़कर अजीतसिंह से मिलकर थराद आदि स्थानों में विद्रोह आरंभ कर दिया। शाहज़ादे आज़म के साहसी लड़के बेदारबख़्त ने, जो उस समय गुजरात का शासक था, दुर्गादास पर फ़ौज भेजी, जिससे दुर्गादास सूरत से दक्षिण में कोलियों के मुल्क में जाकर रहा[2]। उन्हीं दिनों (वि० सं० १७६२ में) महाराजा अजीतसिंह ने मोहकमसिंह को हराकर बहुत यश पाया। उस समय की घटनाओं का हाल बॉम्बे गैज़ेटियर में इस तरह दिया है:—

ई० स० १७०५ में मुहम्मद बेदारबख़्त गुजरात का ४१ वां वाइसराय (प्रधान शासक) बनकर आया। उसी समय खबर मिली कि जोधपुर के अजीतसिंह और राजपीपला के वैरीसाल दोनों विद्रोह के लिए तैयारी कर रहे हैं। प्रायः इसी समय दुर्गादास के अजीतसिंह से मिलने पर एक मुग़ल सेना उनके विरुद्ध थराद में भेजी गई। अजीतसिंह को पहिले लौटना पड़ा, परंतु अंतमें उसने मोहकमसिंह को हराकर क़ाज़िमबेग के

---

१. सरकार; औरंगज़ेब; जि० ५, पृ० २६१। बॉम्बे गैज़ेटियर; जि० १, भाग १, पृ० २९४।

२. वही; पृ० २९४। बांकीदास की ऐतिहासिक बातें; संख्या ५०३।

पुत्र जफ़रकुलीखां पर चढ़ाई कर उससे जोधपुर छीन लिया। दुर्गादास उन दिनों कोलियों के पास था। जब क़ाज़िमबेग का पुत्र (दूसरा) शाहकुली पाटन का नायब हाकिम बनकर वहां जा रहा था, तब दुर्गादास ने रास्ते में उससे लड़कर उसे मार डाला। इसके थोड़े समय बाद ही वीरमगाम के हाकिम मासूम-कुली पर उसने हमलाकर उसे हराया, जिससे वह बड़ी मुश्किल से जान बचाकर भागा। तब सफ़दरखां बाबी ने पाटन के हाकिम बनाये जाने की शर्त पर दुर्गादास को पकड़ लेने या मार डालने का (अफ़सरों के पास) बीड़ा उठाया। उसकी यह प्रार्थना स्वीकार की गई। चूंकि उस समय के बाद दुर्गादास का हाल कुछ सुनने में नहीं आया, इसलिए संभव है कि सफ़दरखां बाबी ने दुर्गादास को मार डालने में सफलता पाई हो[1]।

बॉम्बे गेज़ेटियर के कर्त्ता का यह कथन ठीक नहीं है, क्योंकि राठोड़ दुर्गादास उस समय मारा नहीं गया था। वह वि० सं० १७७५ (ई० स० १७१८) तक जीवित था, जैसा कि आगे मालूम होगा।

विक्रम संवत् १७६३ फाल्गुन वदि १४ (ई० स० १७०७ ता० २० फ़रवरी) को बादशाह आलमगीर का दक्षिण में अहमद-नगर में देहान्त हुआ। यह खबर अजीतसिंह को इसके तीन

१. बॉम्बे गैज़ेटियर; जि० १, भाग १, पृ० २६५।

दिन बाद मिली। जब इस खबर की सचाई में कुछ भी संदेह नहीं रह गया, तब अजीतसिंह अपनी सेना लेकर जालोर से जोधपुर की तरफ़ रवाना हुआ। वहां पहुंचकर दुर्गादास आदि राठोड़ों की मदद से उसने जफ़रकुलीखां[1] को, जो वहां का नायब फ़ौजदार था, निकालकर वि० सं० १७६३ चैत्र वदि ५ (ई० स० १७०७ ता० १२ मार्च) को अपने पिता की राजधानी पर अधिकार कर लिया। उसके जोधपुर में प्रवेश करते ही मुसलमान अपना-अपना सामान छोड़कर भागने लगे। उनमें से बहुत-से पकड़ लिये गये और बहुतसे मार डाले गये। प्रायः २६ वर्षों तक उनके अत्याचारों को सहनेवाले राजपूतों के बदले से बचने के लिए अनेक मुसलमान हिन्दुओं का भेष बनाकर दिन में 'सीताराम' कहकर भीख मांगते और रात को भागते जाते थे। मोहकमसिंह लड़ाई में घायल होने पर मेड़ता छोड़कर नागोर की तरफ़ भागा। सोजत का फ़ौजदार सरदारखां उसका परिवार, धन-दौलत आदि लेकर अजमेर चला गया। सिवाना और पाली के शहर भी इसी तरह ले लिये गये। जोधपुर का क़िला गंगाजल और तुलसी के पत्तों से पवित्र किया गया। सब राठोड़ों ने एकत्र होकर बड़ी खुशियां मनाईं। महाराजा अजीतसिंह ने अपने विरोधियों को सज़ा तथा भला चाहनेवालों को

1. फ़रहती-कृत "तुहफ़ए राजस्थान" में जोधपुर के फ़ौजदार का नाम नाज़िमकुली दिया है।

इनाम दिये। इस तरह राठोड़ दुर्गादास के जीवन का प्रधान कार्य पूर्ण हुआ। उसने मुसलमानों के अधिकार से मारवाड़ को छुड़ाकर अपने राजा के हाथ में सौंप दिया।

औरंगज़ेब की मृत्यु के वाद जोधपुर की स्थिति—

वादशाह औरंगज़ेब की मृत्यु के वाद उसके दोनों पुत्रों, शाहज़ादा मुअज़्ज़म और शाहज़ादा आज़म में परस्पर राज्य लेने के लिए जाजव (आगरे के पास) में लड़ाई हुई। उसमें आज़म अपने पुत्र वेदारवख़्त सहित मारा गया और मुअज़्ज़म शाहआलम वहादुरशाह के नाम से वादशाह वना। वह आँवेर के महाराजा जयसिंह और जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह दोनों से ही नाराज़ था। महाराजा जयसिंह आज़म की फ़ौज में और उसका छोटा भाई विजयसिंह वहादुरशाह की तरफ़ था, इसलिए वादशाह जयसिंह से आँवेर छीनकर विजयसिंह को देना चाहता था। महाराजा अजीतसिंह ने शाही आदमियों से ज़वरदस्ती जोधपुर ले लिया था और नये वादशाह (वहादुरशाह) के दरवार में अपना प्रतिनिधि भी नहीं भेजा था, इसलिए वहादुरशाह उससे भी नाराज़ था। उसने उन दोनों रियासतों को ख़ालसे करने के वाद राजपूताने पर चढ़ाई करने का पक्का विचार कर लिया। अनन्तर उसने मेहरावखां को जोधपुर का फ़ौजदार नियुक्त

कर जोधपुर भेजा और स्वयं सेना सहित आँबेर और अजमेर होता हुआ जोधपुर जाना चाहा। ई० स० १७०८ ता० २० जनवरी (वि० सं० १७६४ माघ सुदि ६) को आँबेर पहुंचकर उसने विजयसिंह को वहां का राज्य देकर 'मिरज़ा राजा' का खिताब दिया। तीन दिन वहां ठहरकर वह जोधपुर की तरफ़ रवाना हुआ। जब वह अजमेर के पास पहुंचा तो उसने सुना कि दक्षिण में औरंगज़ेब के सबसे छोटे पुत्र कामबख़्श ने बग़ावत शुरू कर दी है और उसने अपने नाम से सिक्का और खुतबा जारी किया है। इसलिए बादशाह ने जोधपुर में अपना काम पूरा करने के बाद ही दक्षिण में जाकर कामबख़्श को दबाने का इरादा कर लिया। प्रायः इसी समय बादशाह को ख़बर मिली कि अजीतसिंह ने जोधपुर के फ़ौजदार मेहराबख़ां पर, जब वह मेड़ते से सात कोस पर था, आक्रमण किया, परंतु मेहराबख़ां ने अजीतसिंह को परास्तकर मेड़ता ले लिया। बादशाह ने अजीतसिंह को उसके पास लाने के लिए दुर्गादास के नाम एक फ़रमान भेजा। तीन दिन बाद, जब वह कुछ आगे बढ़ चुका था, अजीतसिंह के पास से उसका उत्तर आने पर बादशाह को तसल्ली हुई, परंतु अजीतसिंह के मन में कुछ संदेह देखकर दुर्गादास के पास उसने फिर एक पत्र भेजा और दूसरे दिन अपने वज़ीर के लड़के ख़ानज़मां को जोधपुर में अजीतसिंह से मिलने को भेजा।

जब बादशाह मेड़ता पहुंचा तब महाराजा अजीतसिंह ने खान-ज़मां के साथ आकर वि० सं० १७६४ फाल्गुन सुदि ६ (ई० स० १७०८ ता० १६ फ़रवरी) को पीपाड़ के पास बादशाह से सलाम किया। बादशाह ने भी उसको ख़िलअत, हाथी, घोड़े तथा पचास हज़ार रुपये देकर उससे तसल्ली कर ली[1]। इस प्रकार अजीतसिंह से मिलने के बाद बादशाह अजमेर लौटा। वि० सं० १७६५ चैत्र सुदि १० (ई० स० १७०८ ता० २० मार्च) को बादशाह ने अजमेर में दुर्गादास को सिरोपाव आदि देकर मनसब देना चाहा, परन्तु दुर्गादास ने कहा—"पहले महाराजा अजीतसिंह को मनसब मिले, फिर मैं लूंगा[2]।" बादशाह ने अजीतसिंह को 'महाराजा' का ख़िताब देकर साढ़े तीन हज़ारी ज़ात व तीन हज़ार सवार का मनसब दिया[3]। इसके अतिरिक्त उसने सोजत आदि परगने भी देने चाहे, परंतु अजीतसिंह ने जोधपुर के बिना उन्हें लेना स्वीकार नहीं किया। मेड़ते से लौटते समय बादशाह ने अपने प्रधान क़ाज़ी क़ाज़ीखां को मुसलमानों के धर्मसंबंधी कामों को करने के लिए जोधपुर भेजा।

अब कामबख़्श का मामला ज़रूरी होने के कारण बहादुर-

१. वीरविनोद; भाग २, पृ० ८३४।

२. जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० २, पृ० ८०। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८३४।

३. इरविन; लेटर मोग़ल्स; जि० १, पृ० ४८।

शाह दक्षिण को रवाना हुआ। उसने दोनों महाराजाओं और दुर्गादास को अपने साथ लिया। ई० स० १७०८ ता० ३० अप्रैल (वि० सं० १७६५ ज्येष्ठ वदि ६) को जब उसका डेरा गांव मंडलेश्वर (मालवे) में हुआ तब दुर्गादास ने अजीतसिंह से कहा कि बादशाह जोधपुर नहीं देना चाहता और उसने मेहराबखां को जोधपुर का हाकिम बनाकर बैठा दिया है तथा नर्मदा के पार होने के बाद हम लोगों को पीछा लौटना मुश्किल हो जावेगा। इसपर अजीतसिंह, जयसिंह और दुर्गादास बादशाह के डेरे से निकलकर उदयपुर के महाराणा अमरसिंह (दूसरे) के पास चले गये और ये तीनों राजा एक साथ मिलकर बादशाह का विरोध करने को तैयार हो गये।

इन तीनों राजाओं की सम्मिलित सेना जोधपुर की तरफ़ चली। ई० स० १७०८ की जुलाई (वि० सं० १७६५ के आषाढ़-श्रावण) में तीस हज़ार राठोड़ों ने जोधपुर को घेरा। मेहराबखां ने अजमेर के सूबेदार से मदद मांगी, परंतु न मिली। तब दुर्गादास के कहने पर महाराजा अजीतसिंह ने मेहराबखां को, जो अपनी पराजय को स्वीकार कर चुका था, जोधपुर से निकल जाने दिया और फिर राठोड़ों ने उसे अजमेर पहुंचाया। इस प्रकार अजीतसिंह ने जोधपुर पर अपना अधिकार कर लिया[1]। अजीतसिंह, सवाई जयसिंह और दुर्गादास वि० सं० १७६५

१. टॉड; राजस्थान; जि० २, पृ० १०१४।

श्रावण वदि १२ (ई० स० १७०८ ता० ३ जुलाई) को बहुत जलूस के साथ जोधपुर के क़िले में घुसे, जहां पर अजीतसिंह को राजतिलक लगाया गया[1]। प्रायः इसी समय सांवलदास और महाराजा जयसिंह के प्रधान रामचन्द्र की अध्यक्षता में राजपूत सेना आँवेर की तरफ़ बढ़ी और उसने वहां के फ़ौजदार सैयद हुसैनखां से लड़ाई की। अनन्तर महाराजा जयसिंह ने वीस हज़ार फ़ौज लेकर रात के समय आँवेर के क़िले पर चढ़ाई की और शाही फ़ौजदार सैयद हुसैनखां को निकालकर आँवेर पर अधिकार कर लिया[2]। इस प्रकार दोनों राज्यों पर अधिकार करने के बाद दोनों राजा अजमेर होकर सांभर की तरफ़ रवाना हुए, जहां पर मुग़लों की सेना रहती थी।

सांभर की लड़ाई—

महाराजा अजीतसिंह और जयसिंह के जोधपुर और आँवेर से मुग़ल फ़ौजदारों को निकाल देने के बाद उन्होंने उदयपुर के महाराणा अमरसिंह को भी बुलाना चाहा। महाराणा स्वयं तो

१. जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० २, पृ० ८४।

२. इरविन; लेटर मोग़ल्स; जि० १, पृ० ६६।

इस अवसर पर न आया, पर उसने कुछ सेना के साथ सांवलदास को भेज दिया। दोनों राजा, राठोड़ दुर्गादास और मेवाड़ की फ़ौज के मददगार मुसाहिब साह सांवलदास आदि वि० सं० १७६५ भाद्रपद सुदि ३ (ई० स० १७०८ ता० ७ अगस्त) को पुष्कर को रवाना हुए। अजमेर के सूबेदार शुजाअतखां बारहा ने उनको धोखा देकर एक महीने तक पुष्कर में रक्खा[1] और गुप्तरूप से बादशाह को मदद भेजने के लिए लिखा। फिर वर्षा के समाप्त होने पर वे सब सांभर में, जहां पर मुसलमानों की फ़ौज रहती थी, पहुंचे। उनका सामना करने के लिए आगरा, मथुरा तथा नारनोल से फ़ौजें आईं। मेवात का फ़ौजदार सैयद हुसैनखां बारहा अपने छोटे भाई मेड़ते के फ़ौजदार अहमद सैयदखां और नारनोल के फ़ौजदार ग़ैरतखां के साथ सेना[2] लेकर आया और उसने राजपूतों पर आक्रमण किया। आरंभ में राजपूतों को अपना सामान छोड़कर पीछा लौटना पड़ा, जो सैयदों के हाथ लगा। सैयदों का विजयडंका बजने लगा। इतने में मुसलमान अफ़सर हुसैनखां ने देखा कि थोड़ी दूर पर प्रायः दो हज़ार राजपूत ऊंटों पर सामान लाद रहे हैं। यह देखकर उसने अपने हाथी को, जिस-पर वह बैठा हुआ था, उनकी तरफ़ दौड़ाया। राजपूतों ने मुसल-

१. वीरविनोद; भाग २, पृ० ८३६।
२. टॉड राजस्थान (जि० २, पृ० १०१५) में १२०००. सेना लिखी है।

मानों को अपनी तरफ़ आते देख एकदम उनपर गोलियां चलाई, जिससे हुसैनखां मय अपने दो भाइयों तथा पचास आदमियों के मारा गया[1]। अफ़सरों के मारे जाने की खबर सुनकर मुग़ल फ़ौज इधर-उधर भागने लगी और राजाओं की विजय हुई।

जोधपुर राज्य की ख्यात[2] में लिखा है कि वि० सं० १७६५ कार्तिक सुदि १ (ई० स० १७०८ ता० ३ अक्टोबर) को सांभर के फ़ौजदार अलीमुहम्मद ने चढ़ाई की। फिर (उसकी मदद के लिए) मथुरा का फ़ौजदार सैयद ग़ैरतखां, नारनोल का फ़ौजदार सैयद हसनखां, आंबेर का फ़ौजदार सैयद हुसैन अहमद आठ हज़ार सवार तथा बहुतसे तोपख़ाने लेकर आये। दोनों राजाओं के पास बीस-पचीस हज़ार फ़ौज थी। मुसलमानों से लड़ाई हुई। दुर्गादास घोड़े पर सवार होकर अच्छा लड़ा। सैयदों का सरदार हाथी पर बैठा था। वह गोली से मारा गया। सांभर के फ़ौजदार अलीमुहम्मद को राजपूतों ने पकड़ लिया। मुसलमानों की फ़ौज भागी और दो हज़ार मुसलमान मारे गये। हाथी, घोड़े, नक़ारा, निशान, तोपख़ाना आदि बहुतसे सामान राजपूतों के हाथ लगे। सांभर को दोनों राजाओं ने आपस में आधा-आधा बांट लेना तय किया।

---

१. इरविन; लेटर मोगल्स; जि० १, पृ० ६६।

२. जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० २, पृ० ८९-९०।

अजीतसिंह का जोधपुर पर अधिकार—

सांभर की लड़ाई के बाद वहां पर अपने-अपने हाकिम नियुक्तकर दोनों राजा आँबेर गये, जहां पर सवाई जयसिंह का बड़े उत्सव के साथ राजतिलक हुआ[1]। जयसिंह आँबेर रहा और अजीतसिंह ने सांभर में जाकर डेरा किया। राठोड़ दुर्गादास महाराणा को बुलाने के लिए उदयपुर भेजा गया।

इन घटनाओं के बाद बहादुरशाह ने (उस समय के लिए) राजाओं से संधि करने की इच्छा प्रकट की। शाहज़ादा अज़ीम-उश्शां के कहने पर ई० स० १७०८ ता० ६ अक्टोबर (वि० सं० १७६५ कार्तिक सुदि ४) को बादशाह ने अजीतसिंह और जयसिंह को उनके पहिले के पद पर नियुक्त किया। महाराजा जयसिंह को दो हज़ारी ज़ात व दो हज़ार सवार का मनसब देकर ३७½ हज़ार रुपये इनाम में दिये गये[2]।

---

१. जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० २, पृ० ६१।

२. इरविन; लेटर मोग़ल्स; जि० १, पृ० ७१। जोधपुर राज्य की ख्यात (जि० २, पृ० ६१) में लिखा है कि वि० सं० १७६५ के मार्गशीर्ष (ई० स० १७०८ के नवंबर) में शाहज़ादा अज़ीमदीन (अज़ीम-उश्शां) के कहने पर बादशाह ने अजीतसिंह को जोधपुर का और जयसिंह को आंबेर का फ़रमान भेजा, जिसपर अजीतसिंह जोधपुर गया।

जब इन राजाओं से सुलह का बन्दोबस्त हो रहा था, उस समय पंजाब से सिक्खों के विद्रोह करने की खबर बादशाह के पास आई। ई० स० १७१० ता० २२ मई (वि० सं० १७६७ ज्येष्ठ सुदि ५) को सिक्खोंने सिरहिन्द के फ़ौजदार वज़ीरखां को मार डाला था, इसलिए बादशाह ने शीघ्र ही राजाओं के साथ स्थायी-रूप से सुलहकर पंजाब का बखेड़ा मिटा देना चाहा। उसने वज़ीर मुनीमखां के बड़े लड़के महाबतखां को भेजकर राजाओं को बुलवाया और स्वयं अजमेर के पास देवराई (दौराई) गांव में जाकर ठहरा। वहां से उसने मुनीमखां को राजाओं को अपने सामने लाने के लिए भेजा। ई० स० १७१० ता० २१ जून (वि० सं० १७६७ आषाढ़ सुदि ६) को जब बादशाह आगे बढ़ा, तब दोनों राजाओं (अजीतसिंह और जयसिंह) ने बादशाह के सामने आकर, प्रत्येक ने २०० मोहरें और २००० रुपये भेंटकर बादशाह को सलामी की। बहादुरशाह ने भी उन्हें सिरोपाव, हाथी, घोड़े, जड़ाऊ तलवार आदि देकर अपने-अपने राज्यों को जाने की सनद दी। दोनों राजा वहां से पुष्कर होते हुए अपने-अपने राज्य को रवाना हो गये। महाराजा अजीतसिंह ई० स० १७१० के जुलाई (वि० सं० १७६७ के श्रावण) मास में जोधपुर पहुंचा और उसने जोधपुर पर स्थायीरूप से अधिकार कर लिया[1]।

---

१ इरविन; लेटर मोग़ल्स; जि० १, पृ० ७३। टॉड; राजस्थान; जि० २, पृ० १०१६।

इस प्रकार महाराजा अजीतसिंह को जोधपुर में जाकर राज्य करने की आज्ञा ई० स० १७१० (वि० सं० १७६७) में मिली। इससे पहिले भी अजीतसिंह ने जोधपुर पर दो बार ज़बरदस्ती अधिकार कर लिया था—प्रथम बार बादशाह औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद ई० स० १७०७ (वि० सं० १७६३) में जाफ़रकुलीखां से और दूसरी बार ई० स० १७०८ (वि० सं० १७६५) में मेहराबखां से। जाफ़रकुलीखां से लेने के बाद बादशाह बहादुरशाह ने जोधपुर को खालसे कर लिया था, जिससे अजीतसिंह का अधिकार वहां पर जमने नहीं पाया, परंतु मेहराबखां से लेने के बाद जोधपुर पर उसका पूर्णतया अधिकार हो गया था। यह सफलता केवल राजाओं के मिलकर काम करने से ही प्राप्त हो सकी थी।

दुर्गादास का मेवाड़ जाना—

राठोड़ दुर्गादास के मेवाड़ में जाकर अपनी वृद्धावस्था व्यतीत करने से महाराजा अजीतसिंह के व्यक्तित्व पर कलंक लग गया है। साधारण रूप से विचारने पर यह बात बड़ी आश्चर्यजनक प्रतीत होगी कि उस मनुष्य को, जिसने अपना तन, मन और धन उत्सर्ग कर मारवाड़ को मुसलमानों के पंजे से छुड़ाया तथा महाराजा अजीतसिंह को उसके पैतृक सिंहासन पर बैठा दिया, अपना देश तथा जागीर छोड़कर शेष

जीवन अन्यत्र बिताना पड़ा; परन्तु गंभीर रूप से विचार करने पर यह अनुमान किया जा सकता है कि केवल अजीतसिंह की इच्छा से ही यह काम नहीं हुआ। कुछ लेखकों ने लिखा है कि बादशाह के दबाव से अजीतसिंह ने दुर्गादास को मारवाड़ से निकाल दिया। फ़रहती लिखता है कि बादशाह बहादुरशाह ने अजीतसिंह को जोधपुर पर अधिकार करने की सनद देते समय यह हुक्म दिया था कि दुर्गादास मारवाड़ में न रहने पावे[1]। अतः संभव है कि तीस साल के लड़ाई-झगड़े के बाद राज्य पाने पर अजीतसिंह ने बादशाह को नाराज़ करना नहीं चाहा हो। "वीरविनोद" में लिखा है कि दुर्गादास को यह घमंड हो गया था कि अजीतसिंह को मारवाड़ मैंने दिलाया और मैं बादशाही मनसबदार हूं, जिससे विरोध बढ़ा[2]। हमें विदित है कि इस समय से पहले अर्थात् ई० स० १७०२ (वि० सं० १७५६) में भी दोनों में अनबन हो गई थी। संभव है, अजीतसिंह और दुर्गादास दोनों ने ही पारस्परिक विरोध में दिन बिताना नहीं चाहा हो और दुर्गादास ने अपने शेष दिन मेवाड़ में जाकर, जहां पर उसे महाराणा से अधिक आदर तथा सम्मान मिलता था, रहना पसन्द किया हो। इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि जाफ़रकुलीख़ां से जोधपुर लेने के बाद

१. फ़रहती; तुहफ़ए राजस्थान; पृ० १८५।
२. वीरविनोद; भाग २, पृ० ८६१।

महाराजा अजीतसिंह ने दुर्गादास को मंत्रित्व का भार देना चाहा था, परन्तु उसने स्वीकार नहीं किया[1]। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है अजीतसिंह अपने पिता के समान गुणग्राहक नहीं था। वह घमंडी था और दुर्गादास के विरोधियों के बहकाने में आ जाता था। संभव है, दुर्गादास की ख्याति को सहन न करनेवाले और भी कुछ मनुष्य रहे हों, जिन्होंने दुर्गादास के निकाले जाने की सम्मति दी हो। दुर्गादास के मारवाड़ से निकाले जाने में चाहे किसी का भी हाथ रहा हो, पर इससे महाराजा अजीतसिंह की बदनामी हो गई[2]। उसके जैसे

---

१. जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० २, पृ० ७१-७२।

२. महाराज अजमालरी जद पारख जाणी।
दुरगो देशां काढियो गोलां गांगाणी॥

इस सम्बन्ध में और भी कुछ दोहे हैं:—

महाराजा मानसिंह (?) के समय सरदारों ने जो बखेड़ा मचाया, उसमें सालावास का ठाकुर करणसिंह चांपावत भी शरीक हो गया था, जो महाराजा का विश्वासपात्र था। महाराजा ने उसके नाम ये दो सोरठे लिख भेजे:—

बिध बिध वाल्हावास कड़ुंवे हेकड किया।
सपने सालावास करहो राजस करणसी॥ १॥
पंडरी गई प्रतीत गाढ रजक दोनों गया।
चांपा हमे नचीत कनक उडावो करणसी॥ २॥

घमंडी राजा के पास दुर्गादास के समान स्वतंत्रताप्रेमी मनुष्य का शान्ति से निर्वाह होना बहुत कठिन था[1]। उसके व्यवहार से दुखी होकर स्वयं दुर्गादास को कहना पड़ा था कि "राजाओं पर कभी भरोसा न करना।"

उदयपुर के महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) ने दुर्गादास को बड़े आदर के साथ रक्खा और विजयपुर का परगना तथा पन्द्रह हज़ार रुपये मासिक उसके लिए नियत कर दिये[2]। फिर महाराणा ने सेना देकर उसे रामपुरे के शासन के लिए, जहां पर चन्द्रावत सरदार फ़साद करते थे, भेजा। दुर्गादास ने वहां जाकर अपने सुशासन से सारा झगड़ा मिटा दिया और वि०

इसके जवाब में करणसिंह ने निम्नलिखित सोरठा लिख भेजा था—

पिंड री हुती प्रतीत शाकदरे जाणी सही।
इण घर याही रीत दुरगो सफरां दागियो॥

१. जोधपुर राज्य की ख्यात (भाग २, पृ० ११६) में लिखा है कि जिस समय अजीतसिंह और जयसिंह ने सांभर लेकर वहां अपना डेरा किया उस समय दुर्गादास ने भी अपनी सेना सहित अलग डेरा किया था। अजीतसिंह ने दुर्गादास को अपनी मिसल (सरदारों की पंक्ति) में आकर डेरा करने को कहा, जिसपर दुर्गादास ने दुखी होकर उत्तर दिया कि मेरी उम्र थोड़ी रह गई है, मेरे वंशज आपकी मिसल में डेरा करेंगे। फिर जब अजीतसिंह ने दुर्गादास को मेवाड़ के महाराणा को बुलाने के लिए भेजा, तब वह मेवाड़ में ही रहा, वापस नहीं आया।

२. टॉड; राजस्थान; जि० २, पृ० १०३४।

सं० १७७४ कार्तिक वदि ५ (ई० स० १७१७ ता० १३ अक्टोबर) को वहां का कुशल.समाचार लिखते हुए महाराणा के नाम पत्र[1] भेजा, जिसकी नक़ल नीचे दी गई है। इस पत्र से निश्चित है कि वि० सं० १७७४ तक दुर्गादास जीवित था। कविराजा बांकीदास की ऐतिहासिक वार्तों में दुर्गादास की अवस्था ८० वर्ष ३ मास और २८ दिन की लिखी है[2]। इस हिसाब से उसकी मृत्यु वि० सं० १७७५ मार्गशीर्ष सुदि ११ (ई० स० १७१८ ता० २२ नवंबर) के आस-पास होनी चाहिए। उक्त पुस्तक में यह भी लिखा है कि महाराणा ने दुर्गादास को सादड़ी गांव का पट्टा दिया, जहां उसने नौ बहिन-बेटियों का विवाह कराया[3]। उसकी एक पुत्री विनयकुंवरी का विवाह सलूंबर के रावत केसरीसिंह से हुआ था। दूसरी पुत्री का नाम कुस(श)लबाई था। उसके चार पुत्रों में दो पुत्रों—अभयकरण और महेकरण—का वीरविनोद के आधार पर पाटन की लड़ाई में मारा जाना लिखा गया है[4], जो ठीक प्रतीत नहीं होता। अभयकरण जयसिंह के पास गया, महेकरण और तेजकरण दुर्गादास के साथ मेवाड़ में गये और चैनकरण समदड़ी में रहा[5]।

१. वीरविनोद; भाग २, पृ० ९६१।

२. बांकीदास की ऐतिहासिक वार्तें; संख्या २७१।

३. वही; संख्या २६७।

४. देखो ऊपर पृ० १२१।

५. बांकीदास की ऐतिहासिक वार्तें; संख्या २६८।

दुर्गादास का देहान्त रामपुरे में हुआ और उसकी दाहक्रिया वहां से कुछ दूरी पर सिप्रा (क्षिप्रा) नदी के किनारे हुई[1]।

दुर्गादास का व्यक्तित्व—

वीरशिरोमणि राठोड़ दुर्गादास आत्मसंयमी, निस्स्वार्थ, निस्पृह, साहसी, दूरदर्शी, देशभक्त, वीर योद्धा, रणकुशल सेनापति, सदाचार की मूर्ति तथा राजनीति का बड़ा ज्ञाता था। वह बचपन से ही अपने वीरतापूर्ण कार्यों के लिए प्रसिद्ध था। महाराजा जसवंतसिंह के रायके को मारकर साहसपूर्वक उसे स्वीकार कर लेना उस अवस्था में कम साहस का काम नहीं था। जब औरंगज़ेब के दरियाई अफ़सरों ने दुर्गादास तथा महाराजा जसवंतसिंह के परिवार को अटक नदी के उस पार रोका, तब वह साहसपूर्ण कार्यों से महाराजा की राणियों को लाहौर तक ले आया। जब वह औरंगज़ेब के पास उसके पोते बुलन्दअख़्तर को देने गया, और औरंगज़ेब ने उसे निःशस्त्र दरबार में लाने की आज्ञा दी, तब उसने निर्भय होकर एक दम अपने हथियार खोल डाले और छली बादशाह के दरबार में भी केवल अपने साहस और बुद्धि के बल पर अकेला चला गया। उसका सम्पूर्ण जीवन साहस और वीरता के कार्यों से भरा हुआ है।

१. टॉड; राजस्थान; जि० २, पृ० १०३४।

महाराजा जसवंतसिंह के बहुतसे सरदार थे, परन्तु केवल दुर्गादास ने ही औरंगज़ेब जैसे ज़बरदस्त बादशाह का सामना कर उसके हाथ से मारवाड़ को छुड़ा लेने का कठिन कार्य अपने ऊपर लिया और सैकड़ों कठिनाइयों को सहकर अन्त में अपना उद्देश्य पूरा किया।

दुर्गादास जैसे वीर और स्वार्थत्यागी व्यक्ति राजपूताने के इतिहास में कम ही हुए हैं। उसने राज्याधिकार किंवा उच्च पद की लालसा से नहीं, बल्कि केवल अपने देश के लिए स्वामी के आदेश की परवाह न कर वह कार्य कर दिखाया जो संसार में बिरले ही कर सकते हैं। यदि वह चाहता तो मुगल-साम्राज्य में बहुत बड़ा पद पा सकता था, परन्तु उसे मारवाड़ की स्वतंत्रता अधिक प्रिय थी। अपने स्वार्थ की उसे उतनी चिन्ता न थी जितनी अजीतसिंह के। वि० सं० १७५१ (ई० स० १६९४) में बादशाह औरंगज़ेब ने और वि० सं० १७६५ (ई० स० १७०८) में बादशाह बहादुरशाह ने (देखो पृष्ठ १०८ तथा १३१) उसको मनसब देना चाहा था, किन्तु उसने यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि पहले महाराजा अजीतसिंह को मनसब दिया जाय, तब मैं लूंगा। स्वार्थत्याग का यह एक अनुकरणीय उदाहरण है।

दुर्गादास बड़ा नीतिज्ञ था और अपनी शक्ति अच्छी तरह जानता था। इसीलिए वह इतने बड़े काम को अपने कंधे पर लेकर निभा सका। औरंगज़ेब ने कई बार अजीतसिंह को मार-

वाड़ का एक छोटासा हिस्सा देकर संतुष्ट करना चाहा था, परंतु दुर्गादास ने जोधपुर के अभाव में संधि करनी नहीं चाही, क्योंकि उसे विश्वास था कि कभी न कभी वह सम्पूर्ण मारवाड़ को स्वतंत्र कर लेगा। पीछे ऐसा ही हुआ। उसने महाराजा जसवंत-सिंह की भविष्यवाणी को पूरा किया और डगमगाते हुए मार-वाड़ को कन्धा देकर पुनः प्राचीन गौरव पर आसीन किया। उदयपुर के महाराणा राजसिंह को राठोड़ों की सहायता के लिए उद्यत करना; फिर शत्रुसेना में भेद उत्पन्नकर अपना कार्य सिद्ध करना बड़ी नीति का काम था। जब उसने देखा कि बादशाह औरंगज़ेब को अकेले जीतना बड़ा कठिन काम है, तब उसने उसके पुत्र शाहज़ादे अकबर को विद्रोह के लिए तैयार कर बादशाह की प्रबल शक्ति को बहुत कम कर दिया। फिर जब वह इस काम में अधिक कृतकार्य न हो सका, तब उसने अकबर को दक्षिण में लेजाकर बादशाह का ध्यान मारवाड़ से हटाकर उधर आकृष्ट कर दिया। परिणाम यह हुआ कि दक्षिण की लड़ाइयों में संलग्न हो जाने के कारण एक समय ऐसा आया कि जब अपनी सेना का एक भी मनुष्य मारवाड़ में भेजकर वहा की सेना की सहायता करना औरंगज़ेब के लिए असंभव हो गया। अन्त में लगातार लड़ाइयां लड़ने के कारण बादशाह की सेना इतनी कमज़ोर हो गई कि ई० स० १७०६ (वि० सं० १७६३) में एक साधारण मरहटे सेनापति धनाजी जादव ने शाही फ़ौज को

रतनपुर में बुरी तरह हराया। इस पराजय को देखकर बादशाह के सब शत्रुओं की आँखें खुल गईं, और उसकी मृत्यु के बाद उसके साम्राज्य के भिन्न-भिन्न स्थानों में विद्रोह होने लगे। इन घटनाओं को देखकर इंग्लैण्ड के परम बुद्धिसम्पन्न तथा नीतिज्ञ प्रधान मंत्री विलियम् पिट् की बात याद आती है। ई० सन् की १८ वीं शताब्दी में जब भारतवर्ष, यूरोप तथा अमेरिका के कैनाडा आदि स्थानों में युद्ध हो रहा था, तब विलियम् पिट् ने अपनी नीति से शत्रु की सेना जर्मनी के युद्ध-क्षेत्र में लड़ाकर कैनाडा आदि स्थानों में उसका प्रभुत्व नष्ट कर दिया। उस समय उसने कहा था कि "हम जर्मनी के मैदान में कैनाडा को जीत रहे हैं[1]।" ठीक उसी तरह राठोड़ दुर्गादास ने अपनी नीति से बादशाह औरंगज़ेब को दक्षिण के मैदान में लड़ाकर मारवाड़ को विजय किया। केवल इतना ही नहीं, बादशाह का प्रभुत्व नष्टकर उसने मुग़ल-साम्राज्य की नींव हिला दी और अन्त में बादशाह को अपनी राजधानी से दूर दक्षिण में रहते हुए ही प्राण त्याग करना पड़ा।

बादशाह आलमगीर दुर्गादास के इन गुणों को देखकर उससे सतर्क रहता था। कहते हैं कि औरंगज़ेब ने एक चित्रकार को अपने शत्रुओं के चित्र बनाने के लिए आज्ञा दी। उसने शिवाजी

१. "We are winning Canada on the plains of Germany" ए. जे. ग्रैन्ट; हिस्ट्री ऑव् यूरोप; भाग २, पृ० ४८०।

को अपने बिस्तरे पर बैठे हुए और दुर्गादास को घोड़े पर सवार होकर एक हाथ से भाले की नोक से आग में रोटी सेंकते हुए दिखाया। औरंगज़ेब ने शिवाजी की तसवीर की तरफ़ इशारा कर कहा कि इसे तो मैं फंदे में डाल सकता हूं, परंतु यह कुत्ता (दुर्गादास की तरफ़ दिखाकर) तो मुझे सताने के लिए ही पैदा हुआ है।

दुर्गादास का हृदय बड़ा विशाल था तथा वह बहुत बुद्धिमान था। मारवाड़ में मुसलमानों का अत्याचार होने पर भी उसने बादशाह के पौत्र और पौत्री को बड़ी सावधानी से रक्खा। केवल इतना ही नहीं, परंतु उसने मुसलमानी धर्म की ज़रा भी अवहेलना न करते हुए उनको क़ुरान आदि की विधिवत् शिक्षा दिलाई। जब हिन्दू-द्वेषी औरंगज़ेब को दुर्गादास के इस महत्त्व का ज्ञान हुआ तो सचमुच वह मुग्ध होकर अवाक् रह गया। दुर्गादास के इस उदार व्यवहार और उसकी समान-दृष्टि देखकर कट्टर औरंगज़ेब भी दुर्गादास के सब अप-राधों को भूल गया तथा उसने उसे मनसब देना स्वीकार कर लिया। जो कार्य वर्षों की लम्बी लड़ाइयां न कर सकीं थीं वह दुर्गादास के इस महत्त्वपूर्ण कार्य ने कर दिखाया।

दुर्गादास अच्छा शासक भी था। उसने रामपुरे में जाकर वहां की अशान्ति मिटाकर अपनी योग्यता का परिचय दिया।

राठोड़ दुर्गादास एक साधारण सरदार था पर उसने संसार को दिखा दिया कि एक साधारण मनुष्य भी धैर्य, बुद्धि, साहस और नीति का अवलम्बन कर क्या नहीं कर सकता। राजपूताने में अपनी स्वतंत्रता के लिए मर मिटनेवाले बहुत हुए हैं, परन्तु केवल अपने राजा तथा देश की स्वतंत्रता के लिए आत्मोत्सर्ग करनेवाले दुर्गादास के जैसे वीर बहुत कम हुए हैं। मारवाड़ में उसके संबन्ध की बहुतसी कविताएं प्रसिद्ध हैं। एक बार मारवाड़ में किसी उत्सव में नौबत बज रही थी, और चारण लोग बैठकर दुर्गादास का यशगान कर रहे थे। एक जाट भी वहां जा पहुंचा और सुनने लगा। उन्होंने उससे कहा कि तुम भी कुछ कहो, जिसपर उसने यह दोहा कहा—

> ढंबक ढंबक ढोल बाजे, दे दे ठोर नगारां की।
> आसे घर दुर्गा नहीं होतो, सुन्नत होती सारां की॥

इस दोहे का तात्पर्य यह है कि आसकरण के घर में यदि दुर्गादास जन्म नहीं लेता तो बादशाह सब (हिंदुओं) को मुसलमान बना लेता। राजपूताना के इतिहास में अपने देश, जाति, धर्म तथा राजा की रक्षा करने में राठोड़ दुर्गादास का नाम चिरस्मरणीय रहेगा।

परिशिष्ट—

दुर्गादास-द्वारा रामपुरा से लिखे हुए महाराणा के नाम के पत्र की नक़ल

॥ श्री परमेश्वरजी सत्य छै जी ॥

॥ सिधश्री उदैपुर सुभसुथांनै सर्व उपमा विराजमांन महाराजाधिरांज महारांणाजी श्री संग्रामसिंघजी चरणकमलायनु रा। दुरगादासजी लिखतुं सेवा मुजरो अवधारजो जी. अठारा समाचार श्री परमेश्वरजीरा प्रताप कर भला छै. श्री माहारांणाजीरा सदा आरोग्य चाहजै जी. श्री दीवंण वड़ा छै. साहव छै. मांसु सदा मया फुरमावै छै. तिणसुं विसेप फुरमावजो जी. अठा लायक कांम चाकरी हुवै. घणी फुरमावजो जी. अठै थोड़ा राजपूत छै. सो श्री दीवंणजीरा कांमनै हाजर छै जी.—

अप्रंच प्रवंनो ईनाईत हुवो वड़ी खुस्याली हुई. हुकम हुवो. ज्यौ रामपुरै रैहतां हजुर नचींताई हुई. उठारो जावतो रहै. सुं श्री दीवंणजीरे प्रताप कर भांत भांत खुं जवतो राखां छा. आठारी तरफसुं श्रीदीवंणजी खतरजमै फुरमावजो जी. ओर हकीकत पंचोली विहारीदासजीरी कागदसुं हजुर गुदरसी जी. वाहुड़ता परवांना वेगा वैगा ईनाईत करावजो जी. मीती[1] काती वदि ५ भौम सं० १७७४ रा.

---

१ इसके दूसरे दिन दुर्गादास ने पंचोली विहारीदास के नाम वि० सं० १७७४ कार्तिक वदि ६ को पत्र लिखा (वीरविनोद; भाग २, पृ० ९६३-६४)।

दुर्गादास के विषय के सोरठे एवं दोहे—

अवरंग घोर अंधार जोत मिटे राजा जशो ।
तूं दुरगा तिणवार आंधा लकडी आशउत ॥ १ ॥
बारे बरसां वीह पांडवही रहिआ प्रछन्न ।
दुरगा हेकण दीह अछतो रह्यो न आशउत ॥ २ ॥
माई एहा पूत जण जेहा दुरगादास ।
मार मुंडासो राखियो विण थांभां आकाश ॥ ३ ॥
किशुं हुए वोहळो कह्यां साच पियारो सोय ।
दुथणी जायो दुरगिया करे न समवड कोय ॥ ४ ॥
दिली कहे दुरगेस केडै किम लागो कमँध ।
विलसी बाळी वेस अजे न छोडै आसउत ॥ ५ ॥
दुरगा आशकरणारा थां में दोय बात अथाह ।
शाहज़ादा शरणां रहे पेश करे पतशाह ॥ ६ ॥